प्रकाशक—
श्री वैजनाथ केडिया
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
ज्ञानवापी, काशी।

शाखाएँ—
२०३, हरिसन रोड, कलकत्ता
दरीबा कलां, दिल्ली
बांकीपुर, पटना

मुद्रक—
कृष्णगोपाल केडिया
वणिक प्रेस
साक्षी विनायक, काशी।

# सप्तसरोज

## बड़े घरकी बेटी

बेनीमाधवसिंह गौरीपुर गाँवके जमींदार और नम्बरदार थे। उनके पितामह किसी समय बड़े धनधान्य सम्पन्न थे। गाँवका पक्का तालाब और मन्दिर, जिनकी अब मरम्मत भी मुश्किल थी, उन्हींके कीर्तिस्तम्भ थे। कहते हैं, इस दरवाजेपर हाथी झूमता था, अब उसकी जगहपर एक बूढ़ी भैंस थी, जिसके शरीरमें पंजरके सिवा और कुछ शेष न रहा था। पर दूध शायद बहुत देती थी, क्योंकि एक-न-एक आदमी हाँडी लिये उसके सरपर सवार ही रहता था। बेनीमाधवसिंह अपनी आधीसे अधिक सम्पत्ति वकीलोंको भेंट कर चुके थे। उनकी वर्त्तमान आय वार्षिक एक हजारसे अधिक न थी। ठाकुर साहबके दो बेटे थे। बड़ेका नाम श्रीकण्ठसिंह था। इन्होंने बहुत दिनोंतक परिश्रम और उद्योगके बाद बी० ए० की डिग्री प्राप्त की थी। अब एक दफ्तरमें नौकर थे। छोटा लड़का लालबिहारीसिंह दोहरे बदनका सजीला जवान था, मुखड़ा भरा हुआ, चौड़ी छाती। भैंसका दो सेर ताजा दूध वह सवेरे उठ पी जाता था। श्रीकण्ठसिंहकी दशा उससे बिल्कुल विपरीत थी। इन नेत्रप्रिय गुणोंको इन्होंने इन्हीं दो अक्षरोंपर न्योछावर कर दिया था। इन दो अक्षरोंने इनके शरीरको निर्बल और चेहरेको कान्तिहीन बना दिया

था। इसीसे वैद्यक ग्रन्थोंपर उनका विशेष प्रेम था। आयुर्वेदिक औषधियोंपर उनका अधिक विश्वास था। सांझ सवेरे उनके कमरेसे प्रायः खरलकी सुरीली कर्णमधुर ध्वनि सुनाई दिया करती थी। लाहौर और कलकत्तेके वैद्योंसे बड़ी लिखा पढ़ी रहती थी।

श्रीकंठ इस अंग्रेजी डिग्रीके अधिपति होनेपर भी अंग्रेजी सामाजिक प्रथाओंके विशेष प्रेमी न थे। बल्कि वह बहुधा बड़े जोरसे उनकी निंदा और तिरस्कार किया करते थे। इसीसे गाँवमें उनका बड़ा सम्मान था। दशहरेके दिनोंमें वह बड़े उत्साहसे रामलीलामें सम्मिलित होते और स्वयं किसी न किसी पात्रका पार्ट लेते। गौरीपुरमें रामलीलाके वे ही जन्मदाता थे। प्राचीन हिन्दू सभ्यताका गुणगान उनकी धार्मिकताका प्रधान अंग था। सम्मिलित कुटुम्ब प्रथाके तो वे एकमात्र उपासक थे। आजकल स्त्रियोंकी कुटुम्बमें मिल जुलकर रहनेकी ओर जो अरुचि होती है उसे वे जाति और देशके लिये बहुत ही हानिकारक समझते थे। यही कारण था कि गाँवकी ललनाएँ उनकी निन्दक थीं। कोई-कोई तो उन्हें अपना शत्रु समझनेमें भी संकोच न करती था, स्वयं उनकी पत्नीको ही इस विषयमें उनसे विरोध था। वह इसलिये नहीं कि उसे अपने सास, ससुर, देवर, जेठसे घृणा थी, बल्कि उसका विचार था कि यदि बहुत कुछ सहन करने और तरह देनेपर भी परिवारके साथ निर्वाह न हो सके तो आये दिनकी कलहसे जीवनको नष्ट करनेकी अपेक्षा यही उत्तम है कि अपनी खिचड़ी अलग पकायी जाय।

आनन्दी एक बड़े कुलकी लड़की थी। उसके बाप एक छोटीसी रियासतके ताल्लुकेदार थे। विशाल भवन, एक हाथी, तीन कुत्ते, बाज, बहरी, सिकरे, झाड़ फानूस, आनरेरी मजिस्ट्रेटी और ऋण, जो एक प्रतिष्ठित ताल्लुकेदारके योग्य पदार्थ हैं वह सभी यहाँ विद्यमान थे। भूपसिंह नाम था। बड़े उदारचित्त प्रतिभाशाली पुरुष थे। पर दुर्भाग्य-वश लड़का एक भी न था। सात लड़कियाँ हुईं और दैवयोगसे सब-

की-अब जीवित रहीं । पहली उमंगमें तो उन्होंने तीन ब्याह दिल खोल कर किये, पर जो पन्द्रह-बीस हजारका कर्ज सिरपर हो गया तो आखें खुलीं, हाथ समेट लिया । आनन्दी चौथी लड़की थी । वह अपनी सब बहिनोंसे अधिक रूपवती और गुणशीला थी, इसीसे ठाकुर भूपसिंह उसे बहुत प्यार करते थे । सुन्दर सतानको कदाचित् उसके माता-पिता भी अधिक चाहते हैं । ठाकुर साहब बड़े धर्म सकटमें थे कि इसका विवाह कहाँ करें । न तो यही चाहते थे कि ऋणका बोझ बढ़े और न यही स्वीकार था कि उसे अपनेको भाग्यहीन समझना पड़े । एक दिन श्रीकठ उनके पास किसी चन्देका रुपया मागने आए । शायद नागरीप्रचारक चन्दा था । भूपसिंह उनके स्वभावपर रीझ गये और धूमधामसे श्रीकंठसिंहका आनन्दीके साथ विवाह हो गया ।

आनन्दी अपने नये घरमें आई तो यहाँका रङ्ग-ढङ्ग कुछ और ही देखा । जिस टीमटामकी उसे बचपनसे ही आदत पड़ी हुई थी वह यहाँ नाममात्रको भी न थी । हाथी घोड़ोंकी तो बात ही क्या कोई सजी हुई सुन्दर बहलीतक न थी । रेशमी स्लीपर साथ लाई थी, पर यहाँ बाग कहाँ । मकानमें खिड़कियातक न थीं, न जमीनपर फर्श, न दीवारपर तस्वीरें । यह एक सीधे सादे देहाती गृहस्थका मकान था । किन्तु आनन्दी-ने थोड़े ही दिनोंमें अपनेको इस नयी अवस्थाके ऐसा अनुकूल बना लिया मानों उसने विलासके सामान कभी देखे ही न थे ।

२

एक दिन दोपहरके समय लालबिहारीसिंह चिड़िया लिये हुए आया और भावजसे कहा, जल्दीसे पका दो, मुझे भूख लगी है । आनन्दी भोजन बनाकर इनकी राह देख रही थी । अब यह नया व्यञ्जन बनाने बैठी । हांडीमें देखा तो घी पावभरसे अधिक न था । बड़े घरकी बेटी, किफायत क्या जाने ! उसने सब घी मासमें डाल दिया ।

लालबिहारी खाने बैठा तो दालमें घी न था, बोला, दालमें घी क्यों न छोड़ा ?

आनन्दीने कहा, घी सब मासमें पड़ गया, लालबिहारी जोरसे बोला, अभी परसों घी आया है, इतनी जल्दी उठ गया ?

आनन्दीने उत्तर दिया, आज तो कुल पाव भर रहा होगा। वह सब मैंने मासमें डाल दिया।

जिस तरह सूखी लकड़ी जल्दीसे जल उठती है, उसी तरह क्षुधासे बावला मनुष्य जरा जरासी बातपर तिनक जाता है।

लालबिहारीको भावजकी यह ढिठाई बहुत बुरी मालूम हुई। तिनक कर बोला, मैकेमें तो चाहे घीकी नदी बहती है।

स्त्री गालिया सह लेती है, मार भी सह लेती है, पर मैकेकी निन्दा उससे नहीं सही जाती। आनन्दी मुँह फेरकर बोली, हाथी मरा भी तो नौ लाखका, वहा इतना घी नित्य नाई-कहार खा जाते हैं।

लालबिहारी जल गया, थाली उठाकर पटक दी और बोला, जी चाहता है कि जीभ पकड़कर खींच लू।

आनन्दीको भी क्रोध आया। मुँह लाल हो गया, बोली, वह होते तो आज इसका मजा चखा देते।

अब अपढ़, उजड्ड ठाकुरसे न रहा गया। उसकी स्त्री एक साधारण जमींदारकी बेटी थी। जब जी चाहता उसपर हाथ साफ कर लिया करता था। उसने खड़ाऊ उठाकर आनन्दीकी ओर जोरसे फेंकी और बोला, जिसके गुमानपर भूली हुई हो उसे भी देखूगा और तुम्हें भी।

आनन्दीने हाथसे खड़ाऊ रोकी, सिर बच गया, पर अंगुलीमें बड़ी चोट आयी। क्रोधके मारे हवासे हिलते हुए पत्तेकी भाति काँपती हुई अपने कमरेमें आकर खड़ी हो गई। स्त्रीका बल और साहस, मान और मर्यादा पतितक है। उसे अपने पतिके ही बल और पुरुषत्वका घमण्ड होता है। आनन्दी लहूका घूंट पीकर रह गई।

३

श्रीकण्ठसिंह शनिवारको घर आया करते थे। बृहस्पतिको यह घटना हुई थी। दो दिनतक आनन्दी कोपभवनमें रही। न कुछ खाया, न पिया, उनकी बाट देखती रही। अन्तमें शनिवारको वह नियमानुकूल संध्या समय घर आये और बाहर बैठकर कुछ इधर-उधरकी बातें, कुछ देश और काल सम्बन्धी समाचार तथा कुछ नये मुकद्दमों आदिकी चर्चा करने लगे। यह वार्त्तालाप दस बजे राततक होता रहा। गाँवके भद्र पुरुषोंको इन बातोंमें ऐसा आनन्द मिलता था कि खाने पीनेकी भी सुधि न रहती थी। श्रीकण्ठका पिण्ड छुड़ाना मुश्किल हो जाता था। यह दो तीन घण्टे आनन्दीने बड़े कष्टमें काटे। किसी तरह भोजनका समय आया। पञ्चायत उठी। जब एकान्त हुआ तब लालबिहारीने कहा—भैया, आप जरा घरमें समझा दीजियेगा कि मुँह सम्भालकर बातचीत किया करें, नहीं तो एक दिन अनर्थ हो जायगा।

बेनीमाधवसिंहने बेटेकी ओरसे साक्षी दी, हाँ, बहू बेटियोंका यह स्वभाव अच्छा नहीं कि पुरुषोंके मुँह लगें।

लालबिहारी—वह बड़े घरकी बेटी है तो हमलोग भी कोई कुर्मी कहार नहीं हैं।

श्रीकण्ठने चिन्तित स्वरसे पूछा, आखिर बात क्या हुई?

लालबिहारीने कहा, कुछ भी नहीं, योंही आप ही-आप उलझ पड़ीं। मैकेके सामने हमलोगोंको कुछ समझतीं ही नहीं।

श्रीकण्ठ खा पीकर आनन्दीके पास गये। वह भरी बैठी थी। यह हजरत भी कुछ तीखे थे। आनन्दीने पूछा, चित्त तो प्रसन्न है?

श्रीकण्ठ बोले, बहुत प्रसन्न हैं पर तुमने आजकल घरमें यह क्या उपद्रव मचा रखा है?

आनन्दीकी त्योरियोंपर बल पड़ गये और झुंझलाहटके मारे बदन-

में ज्वाला सी दहक उठी। बोली, जिसने तुम्हें यह आग लगाई है, उसे पाऊँ तो मुँह झुलस दूँ।

श्रीकण्ठ—इतनी गरम क्यों होती हो, बात तो कहो ?

आनन्दी—क्या कहूँ यह मेरे भाग्यका फेर है। नहीं तो एक गवार छोकरा जिसको कि चपरासीगिरी करनेका भी ढग नहीं मुझे खड़ाऊँसे मारकर यों न अकड़ता।

श्रीकण्ठ—सब साफ साफ हाल कहो तो मालूम हो। मुझे तो कुछ पता नहीं।

आनन्दी—परसों तुम्हारे लाडले भाईने मुझसे मांस पकानेको कहा। घी हांडीमें पावभरसे अधिक न था। वह मैंने सब मांसमें डाल दिया। जब खाने बैठा तो कहने लगा दालमें घी क्यों नहीं है ? बस, इसीपर मेरे मैकेको भला बुरा कहने लगा। मुझसे न रहा गया, मैंने कहा कि वहां इतना घी तो नाई कहार खा जाते हैं और किसीको जान भी नहीं पड़ता। बस इतनीसी बातपर उस अन्यायीने मुझपर खड़ाऊ फेंक मारी। यदि हाथसे रोक न लेती तो सिर फट जाता। उसीसे पूछो कि मैंने जो कुछ कहा है वह सब सच है या झूठ।

श्रीकण्ठकी आखें लाल हो गईं। बोले, यहांतक हो गया; इस छोकरेका यह साहस !

आनन्दी स्त्रियोंके स्वभावानुसार रोने लगी, क्योंकि आँसू उनकी पलकोंपर रहते हैं। श्रीकण्ठ बड़े धैर्यवान् और शान्त पुरुष थे। उन्हे कदाचित् ही कभी क्रोध आता था, पर स्त्रियोंके आसू पुरुषोंकी क्रोधाग्नि भड़कानेमें तेलका काम देते हैं। रातभर करवटें बदलते रहे। उद्विग्नताके कारण पलकतक नहीं झपकी। प्रातःकाल अपने बापके पास जाकर बोले, दादा, अब इस घरमें मेरा निर्वाह न होगा।

इस तरहकी विद्रोहपूर्ण बातें कहनेपर श्रीकण्ठने कितनी ही बार अपने कई मित्रोंको आड़े हाथों लिया था। परन्तु दुर्भाग्य, आज उन्हे

स्वयं वही बात अपने मुंहसे कहनी पड़ी । दूसरोंको उपदेश देना भी कितना सहज है !

बेनीमाधवसिंह घबड़ाकर उठे और बोले, क्यों, क्यों ?

श्रीकण्ठ— इसलिये कि मुझे भी अपनी मान प्रतिष्ठाका कुछ विचार है । आपके घरमें अब अन्याय और हठका प्रकोप हो रहा है । जिनको बड़ोंका आदर सम्मान करना चाहिये वह उनके सिर चढ़ते हैं । मैं दूसरेका चाकर ठहरा, घरपर रहता नहीं, यहां मेरे पीछे स्त्रियोंपर खड़ाऊं और जूतोंकी बौछारें होती हैं । कड़ी बाततक चिन्ता नहीं, कोई एककी दो कह ले, यहाँतक मैं सह सकता हूँ, किन्तु यह कदापि नहीं हो सकता कि मेरे ऊपर लात, घूंसे पड़ें और मैं दम न मारूँ ।

बेनीमाधव सिंह कुछ जवाब न दे सके । श्रीकण्ठ सदैव उनका आदर करते थे । उनके ऐसे तेवर देखकर बूढ़े ठाकुर अवाक रह गये । केवल इतना ही बोले, बेटा, तुम बुद्धिमान होकर ऐसी बातें करते हो ? स्त्रियाँ इसी तरह घरका नाश कर देती हैं । उनको बहुत सिर चढ़ाना अच्छा नहीं ।

श्रीकण्ठ— इतना मैं जानता हूं, आपके आशीर्वादसे ऐसा मूर्ख नहीं हूँ । आप स्वयं जानते हैं कि मेरे ही समझाने बुझानेसे इसी गांवमें कई घर सम्हल गये पर जिस स्त्रीकी मान प्रतिष्ठाका मैं ईश्वरके दर्बारमें उत्तरदाता हूं उसके साथ ऐसा घोर अन्याय और पशुवत् व्यवहार मुझे असह्य है । आप सच मानिये मेरे लिये यही कुछ कम नहीं है कि लालबिहारीको कुछ दण्ड नहीं देता ।

अब बेनीमाधव सिंह भी गरमाये । ऐसी बातें और न सुन सके । बोले लालबिहारी तुम्हारा भाई है, उससे जब कभी भूल हो उसके कान पकड़ो । लेकिन—

श्रीकण्ठ— लालबिहारीको मैं अपना भाई नहीं समझता ।

बेनीमाधव सिंह— स्त्रीके पीछे ?

श्रीकण्ठ—जी नहीं, उसकी क्रूरता और अविवेकके कारण।

दोनों कुछ देर चुप रहे। ठाकुर साहब लड़केका क्रोध शांत करना चाहते थे लेकिन यह नहीं स्वीकार करना चाहते थे कि लालबिहारीने कोई अनुचित काम किया है। इसी बीचमें गांवके और कई सज्जन हुक्का चिलमके बहानेसे वहां आ बैठे। कई स्त्रियोंने जब यह सुना कि श्रीकंठ पत्नीके पीछे पितासे लड़नेपर तैयार हैं तो उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। दोनों पक्षोंकी मधुर वाणियां सुननेके लिये उनकी आत्माएं तलमलाने लगीं। गांवमें कुछ ऐसे कुटिल मनुष्य भी थे जो इस कुलकी नीतिपूर्ण गतिपर मन ही मन जलते थे। वह कहा करते थे, श्रीकंठ अपने बापसे दबता है इसलिये वह दब्बू है। उसने इतनी विद्या पढ़ी इसलिये वह किताबोंका कीड़ा है, बेनीमाधवसिंह उसकी सलाहके बिना कोई काम नहीं करते यह उनकी मूर्खता है। इन महानुभावोंकी शुभ कामनाएं आज पूरी होती दिखाई दीं। कोई हुक्का पीनेके बहाने और कोई लगानकी रसीद दिखानेके बहाने आ-आकर बैठ गये। बेनीमाधवसिंह पुराने आदमी थे, इन भावोंको ताड़ गये। उन्होंने निश्चय किया कि चाहे कुछ भी क्यों न हो, इन द्रोहियोंको ताली बजानेका अवसर न दूंगा। तुरत कोमल शब्दोंमें बोले, अब तो लड़केसे अपराध हो गया।

इलाहाबादका अनुभव रहित झल्लाया हुआ ग्रेजुएट इस बातको न समझ सका। उसे डिबेटिंग क्लबमें अपनी बातपर अड़नेकी आदत थी, इन हथकंडोंकी उसे क्या खबर! बापने जिस मतलबसे बात पलटी थी वह उसकी समझमें न आया, बोला—मैं लालबिहारीके साथ अब इस घरमें नहीं रहता।

बेनीमाधव—बेटा, बुद्धिमान लोग मूर्खोंकी बातपर ध्यान नहीं देते। वह बेसमझ लड़का है। उससे जो कुछ भूल हुई है उसे तुम बड़े होकर क्षमा कर दो।

श्रीकंठ—उसकी इस दुष्टताको मैं कदापि नहीं सह सकता, या तो

वही घरमें रहेगा या मैं ही रहूंगा। आपको यदि वह अधिक प्यारा है तो मुझे विदा कीजिये, मैं अपना भार आप सम्भाल लूंगा। यदि मुझे रखना चाहते हैं तो उससे कहिये जहां चाहे चला जाय। बस, यही मेरा अन्तिम निश्चय है।

लालबिहारीसिंह दरवाजेकी चौखटपर चुपचाप खड़ा बड़े भाईकी बातें सुन रहा था। वह उनका बहुत आदर करता था। उसे कभी इतना साहस नहीं हुआ था कि श्रीकण्ठके सामने चारपाईपर बैठ जाय, हुक्का पी ले वा पान खा ले। बापका भी वह इतना मान न करता था। श्रीकण्ठका भी उसपर हार्दिक स्नेह था। अपने होशमें उन्होंने कभी उसे घुड़कातक नहीं था। जब इलाहाबादसे आते तो उसके लिये कोई न कोई वस्तु अवश्य लाते। मुग्दरकी जोड़ी उन्होंने बनवा दी थी। पिछले साल जब उसने अपनेसे ड्योढ़े जवानको नागपंचमीके दिन दंगलमें पछाड़ दिया तो उन्होंने पुलकित होकर अखाड़ेमें जाकर उसे गले लगा लिया था। पाँच रुपयेके पैसे लुटाये थे। ऐसे भाईके मुंहसे आज ऐसी हृदय-विदारक बात सुनकर लालबिहारीको बड़ी ग्लानि हुई। वह फूट-फूट कर रोने लगा। इसमें सन्देह नहीं कि वह अपने कियेपर आप पछता रहा था। भाईके आनेके एक दिन पहले हो उसकी छाती धड़कती थी कि देखूं भैया क्या कहते हैं। मैं उनके सम्मुख कैसे जाऊंगा, उनसे कैसे बोलूंगा, मेरी आँखें उनके सामने कैसे उठेंगी। उसने समझा था कि भैया मुझे बुलाकर समझा देंगे। इस आशाके विपरीत आज उसने उन्हें निर्दयताकी मूर्ति बने हुए पाया। वह मूर्ख था परन्तु उसका मन कहता था कि भैया मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं। यदि श्रीकण्ठ उसे अकेलेमें बुलाकर दो चार बड़ी बातें कह देते, इतना ही नहीं दो-चार तमाचे भी लगा देते तो कदाचित् उसे इतना दुःख न होता, पर भाईका यह कहना कि अब मैं उसकी सूरत नहीं देखना चाहता, लालबिहारीसे न सहा गया। वह रोता हुआ घरमें आया। कोठरीमें जाकर कपड़े पहने, आंखें

पोछीं, जिसमें कोई यह न समझ सके कि रोता था। तब आनन्दीके द्वारपर आकर बोला—भाभी! भैयाने निश्चय किया है कि वह मेरे साथ इस घरमें न रहेंगे। वह अब मेरा मुँह नहीं देखना चाहते। इसलिये मैं अब जाता हूँ, फिर उन्हें मुँह न दिखाऊँगा। मुझसे जो कुछ अपराध हुआ हो उसे क्षमा करना।

यह कहते कहते लालबिहारीका गला भर आया।

४

जिस समय लालबिहारीसिंह सिर झुकाये आनन्दीके द्वारपर खड़ा था, उसी समय श्रीकंठसिंह भी आखें लाल किये बाहरसे आये। भाईको खड़ा देखा तो घृणासे आखें फेर लीं और कतराकर निकल गये मानो उसकी परछाहींसे दूर भागते हैं।

आनन्दीने लालबिहारीकी शिकायत तो की थी लेकिन अब मनमें पछता रही थी। वह स्वभावसे ही दयावती थी। उसे इसका तनिक भी ध्यान न था कि बात इतनी बढ़ जायगी। वह मनमें अपने पतिपर झुँझला रही थी कि यह इतनेमें गरम क्यों हो जाते हैं? उसपर यह भय भी लगा हुआ था कि कहीं मुझसे इलाहाबाद चलनेको कहें तो कैसे क्या करूँगी। इसी बीचमें जब उसने लालबिहारीको दरवाजेपर खड़े यह कहते सुना कि अब मैं जाता हूँ, मुझसे जो कुछ अपराध हुआ है उसे क्षमा करना, तो उसका रहा सहा क्रोध भी पानी पानी हो गया। वह रोने लगी। मनकी मैल धोनेके लिये नयन जलसे उपयुक्त और कोई वस्तु नहीं है।

श्रीकंठको देखकर आनन्दीने कहा, लाला बाहर खड़े बहुत रो रहे हैं।

श्रीकंठ—तो मैं क्या करूँ?

आनन्दी—भीतर बुला लो। मेरी जीभमें आग लगे, मैंने कहाँसे यह झगड़ा उठाया।

श्रीकंठ—मैं न बुलाऊंगा।

आनन्दी—पछताओगे। उन्हें बहुत ग्लानि हो गई है, ऐसा न हो कहीं चल दें।

श्रीकंठ न उठे। इतनेमें लालबिहारीने फिर कहा, भाभी! भैयासे मेरा प्रणाम कह दो। वह मेरा मुंह नहीं देखना चाहते, इसलिये मैं भी अपना मुंह उन्हें न दिखाऊंगा।

लालबिहारी इतना कहकर लौट पड़ा और शीघ्रतासे दरवाजेकी ओर बढ़ा। अन्तमें आनन्दी कमरेसे निकली और उसका हाथ पकड़ लिया। लालबिहारीने पीछे फिरकर देखा और आँखोंमें आँसू भर बोला, मुझे जाने दो।

आनन्दी—कहाँ जाते हो?

लालबिहारी—जहाँ कोई मेरा मुंह न देखे।

आनन्दी—मैं न जाने दूंगी।

लालबिहारी—मैं तुम लोगोंके साथ रहने योग्य नहीं हूं।

आनन्दी—तुम्हें मेरी सौगन्ध, अब एक पग भी आगे न बढ़ाना।

लालबिहारी—जबतक मुझे यह न मालूम हो जाय कि भैयाका मन मेरी तरफसे साफ हो गया, तबतक मैं इस घरमें कदापि न रहूंगा।

आनन्दी—मैं ईश्वरको साक्षी देकर कहती हूं कि तुम्हारी ओरसे तनिक भी मैल नहीं है।

अब श्रीकंठका हृदय भी पिघला। उन्होंने बाहर आकर लालबिहारीको गले लगा लिया। दोनों भाई खूब फूट फूटकर रोये। लालबिहारीने सिसकते हुए कहा, भैया! अब कभी मत कहना कि तुम्हारा मुंह न देखूंगा। इसके सिवा आप जो दण्ड देंगे वह मैं सहर्ष स्वीकार करूंगा।

श्रीकंठने कांपते हुए स्वरसे कहा—लल्लू! इन बातोंको बिलकुल भूल जाओ, ईश्वर चाहेगा तो अब फिर ऐसा अवसर न आवेगा।

बेनीमाधवसिंह बाहरसे आ रहे थे। दोनों भाइयोंको गले मिलते देखकर आनन्दसे पुलकित हो गये, बोल उठे, बड़े घरकी बेटियाँ ऐसी ही होती हैं।

गाँवमें जिसने यह वृत्तान्त सुना उसीने इन शब्दोंमें आनन्दीकी उदारताको सराहा "बड़े घरकी बेटियां ऐसी ही होती हैं।"



# सौत

पंडित देवदत्तका विवाह हुए बहुत दिन हुए, पर उनके कोई सन्तान न हुई। जबतक उनके माँ-बाप जीवित थे तबतक वे उनसे सदा दूसरा विवाह कर लेनेके लिये आग्रह किया करते थे, पर वे राजी न हुए। उन्हें अपनी पत्नी गोदावरीसे अटल प्रेम था। सन्तानसे होनेवाले सुखके निमित्त वे अपना वर्त्तमान पारिवारिक सुख नष्ट न करना चाहते थे। इसके अतिरिक्त वे कुछ नये विचारके मनुष्य थे। वे कहा करते थे कि सन्तान होनेसे माँ बापकी जिम्मेदारियाँ बढ़ जाती हैं। जबतक मनुष्यमें यह सामर्थ्य न हो कि वह उसका भले प्रकार पालन, पोषण और शिक्षण आदि कर सके तबतक उसकी सन्तानसे देश, जाति और निजका कुछ भी कल्याण नहीं हो सकता। पहले तो कभी-कभी बालकोंको हँसते खेलते देखकर उनके हृदयपर चोट भी लगती थी, परन्तु अब अपने अनेक देश भाइयोंकी तरह वे भी शारीरिक व्याधियोंसे ग्रस्त रहने लगे। अब किस्से-कहानियोंके बदले धार्मिक ग्रन्थोंमें उनका अधिक मनोरञ्जन होता था। अब सन्तानका ख्याल करते ही उन्हें भय-सा लगता था।

पर गोदावरी इतनी जल्दी निराश होनेवाली न थी। पहले तो वह देवी देवता, गण्डे तावीज और यन्त्र-मन्त्र आदिकी शरण लेती रही, परन्तु जब उसने देखा कि ये औषधियाँ कुछ काम नहीं करतीं तब वह एक महौषधिकी फिक्रमें लगी जो कायाकल्पसे कम नहीं थी। उसने

दिलको बहुत समझाया, परन्तु मनमें जो बात समा गई थी वह किसी तरह न निकली। उसे बड़ा भारी आत्मत्याग करना पड़ेगा। शायद पति प्रेमके सदृश अनमोल रत्न भी उसके साथ निकल जाय, पर क्या ऐसा हो सकता है? पन्द्रह वर्षतक लगातार जिस प्रेमके वृक्षको उसने सेवा की है क्या वह हवाका एक झोंका भी न सह सकेगा?

गोदावरीने अन्तमें अपने प्रबल विचारोंके आगे सिर झुका ही दिया। अब सौतका आगमन करनेके लिये वह तैयार हो गई थी।

२

पण्डित देवदत्त गोदावरीका यह प्रस्ताव सुनकर स्तम्भित हो गये। उन्होंने अनुमान किया कि या तो यह प्रेमकी परीक्षा कर रही है या मेरा मन लेना चाहती है। उन्होंने उसकी बात हँसकर टाल दी। पर जब गोदावरीने गम्भीर भावसे कहा, तुम इसे हँसी मत समझो, मैं अपने हृदयसे कहती हूँ कि सन्तानका मुँह देखनेके लिये मैं सौतसे छातीपर मूँग दलवानेके लिये तैयार हूँ, तब तो उनका सन्देह जाता रहा। इतने ऊँचे और पवित्र भावसे भरी हुई गोदावरीको उन्होंने गलेसे लिपटा लिया। वे बोले, मुझसे यह न होगा। मुझे सन्तानकी अभिलाषा नहीं।

गोदावरीने जोर देकर कहा, तुमको न हो, मुझे तो है। अगर अपनी खातिरसे नहीं तो तुम्हें मेरी खातिरसे यह काम करना ही पड़ेगा।

पण्डितजी सरल स्वभावके मनुष्य थे। हामी तो उन्होंने न भरी, पर बार-बार कहनेसे वे कुछ-कुछ राजी अवश्य हो गये। उस तरफसे इसीकी देर थी। पण्डितजीको कुछ भी परिश्रम न करना पड़ा। गोदावरीकी कार्य-कुशलताने सब काम उनके लिये सुलभ कर दिया। उसने इस कामके लिये अपने पाससे केवल रुपये ही नहीं निकाले, किन्तु अपने गहने और कपड़े भी अर्पण कर दिये। लोक-निन्दाका भय इस मार्गमें सबसे बड़ा काँटा था। देवदत्त मनमें विचार करने लगे कि जब मैं मौर सजाकर

करूँगा तब लोग मुझे क्या कहेंगे ? मेरे दफ्तरके लोग मेरी हँसी उड़ायेंगे और मुस्कुराते हुए कटाक्षोंसे मेरी ओर देखेंगे। उन कटाक्ष छुरीसे भी ज्यादा तेज होंगे। उस समय मैं क्या करूँगा।

गोदावरीने अपने गाँवमें जाकर इस कार्यको आरम्भ कर दिया और इसे निर्विघ्न समाप्त भी कर डाला। नयी बहू घरमें आ गई। उस समय गोदावरी ऐसी प्रसन्न मालूम हुई मानों वह बेटेका व्याह कर लाई हो। वह खूब गाती बजाती रही। उसे क्या मालूम था कि शीघ्र ही इस गानेके बदले रोना पड़ेगा।

२

कई साल बीत गये। गोदावरी अपनी सौतपर इस तरह शासन करती थी मानों वह उसकी सास हो, तथापि वह यह बात कभी न भूलती थी कि मैं वास्तवमें उसकी सास नहीं हूँ। उधर गोमतीको भी अपनी स्थितिका पूरा ख्याल रहता था। इसी कारण सासके शासनकी तरह कठोर न रहनेपर भी गोदावरीका शासन उसे अप्रिय प्रतीत होता था। उसे अपनी छोटी मोटी जरूरतोंके लिये भी गोदावरीसे कहते सकोच होता था।

कुछ दिनों बाद गोदावरीके स्वभावमें एक विशेष परिवर्त्तन दिखाई देने लगा। वह पण्डितजीको घरमें आते जाते बड़ी तीव्र दृष्टिसे देखने लगी। उसकी स्वाभाविक गम्भीरता अब मानों लोपसी हो गई, जरासी बात भी उसके पेटमें नहीं पचती। जब पण्डितजी दफ्तरसे आते तब गोदावरी उनके पास बैठी वैठी गोमतीका वृत्तान्त सुनाया करती। इस वृत्तान्त-कथनमें बहुतसी ऐसी छोटी मोटी बातें भी होती थीं कि जब कथा समाप्त होती तब पण्डितजीके हृदयसे बोझ-सा उतर जाता। गोदावरी क्यों इतनी मृदुभाषिणी हो गई थी, इसका कारण समझना मुश्किल है। शायद अब वह गोमतीसे डरती थी। उसके सौन्दर्यसे, उसके

यौवनसे, उसके लज्जायुक्त नेत्रोंमे शायद वह अपनेको पराभूत समझती। बाधको तोड़कर वह पानीकी धाराको मिट्टीके ढेलोंसे रोकना चाहती थी।

एक दिन गोदावरीने गोमतीसे मीठा चावल पकानेको कहा। शायद वह रक्षाबन्धनका दिन था। गोमतीने कहा, शक्कर नहीं है। गोदावरी यह सुनते ही विस्मित हो उठी। उतनी शक्कर इतनी जल्दी कैसे उठ गई! जिसे छाती फाड़कर कमाना पड़ता है, उसे अखरता है, खाने-वाले क्या जानें?

जब पण्डितजी दफ्तरसे आये तब यह जरा सी बात बड़ा विस्तृत रूप धारण करके उनके कानोंमें पहुँची। थोड़ी देरके लिये पण्डितजीके दिलमें यह शंका हुई कि गोमतीको कहीं भस्मक रोग तो नहीं हो गया।

ऐसी ही घटना एक बार फिर हुई। पण्डितजीको बवासीरकी शिकायत थी। लालमिर्च वे बिल्कुल न खाते थे। गोदावरी जब रसोई बनाती थी तब वह लालमिर्च रसोई घरमें लाती ही न थी। गोमतीने एक दिन दालके साथ थोड़ी-सी लालमिर्च भी डाल दी। पण्डितजीने दाल कम खाई। पर गोदावरी गोमतीके पीछे पड़ गयी। ऐंठकर बोली— ऐसी जीभ जल क्यों नहीं जाती?

४

पण्डितजी बड़े ही सीधे आदमी थे। दफ्तरसे आये, खाना खाया, पढ़कर सो रहे। वे एक साप्ताहिक पत्र मगाते थे। उसे कभी-कभी महीनों खोलनेकी नौबत न आती थी। जिस काममें जरा भी कष्ट या परिश्रम होता, उससे वे कोसों दूर भागते थे। कभी कभी उनके दफ्तरमें थिये-टरके "पास" मुफ्त मिला करते थे। पर पण्डितजी उनसे कभी काम नहीं लेते, और ही लोग उनसे माग ले जाया करते। रामलीला या कोई मेला तो उन्होंने शायद नौकरी करनेके बाद फिर कभी देखा ही नहीं। गोदावरी उनकी प्रकृतिका परिचय अच्छी तरह पा चुकी थी।

पण्डितजी भी प्रत्येक विषयमें गोदावरीके ही मतानुसार चलने में अपनी कुशल समझते थे।

पर रूई सी मुलायम वस्तु भी दबकर कठोर हो जाती है। पण्डितजीको यह आठों पहरकी चह-चह असह्य सी प्रतीत होती। कभी कभी मनमें झुंझलाने भी लगते। इच्छा शक्ति जो इतने दिनोंतक बेकार पड़ी रहनेसे निर्बलसी हो गई थी, अब कुछ सजीव सी होने लगी थी।

पण्डितजी यह मानते थे कि गोदावरीने सौतको घर लानेमें बड़ा भारी त्याग किया है। उसका यह त्याग अलौकिक कहा जा सकता है, परन्तु उसके त्यागका भार जो कुछ है वह मुझपर है, गोमतीपर उसका क्या एहसान? मेरे कारण उसपर क्यों ऐसी क्रूरता की जाती है? यहाँ उसे कौन सा सुख है जिसके लिये वह फटकारपर फटकार सहे! पति मिला है वह बूढ़ा और सदा रोगी, घर मिला है वह ऐसा कि अगर नौकरी छूट जाय तो कल चूल्हा न जले। इस दशामें गोदावरीका यह स्नेह रहित बर्ताव उन्हें बहुत अनुचित मालूम होता।

गोदावरीकी दृष्टि इतनी स्थूल न थी कि उसे पण्डितजीके मनके भाव नजर न आवे। उनके मनमें जो विचार उत्पन्न होते वे सब गोदावरीको उनके मुखपर अङ्कितसे दिखाई पड़ते। यह जानकारी उसके हृदयमें एक ओर गोमतीके प्रति ईर्षाकी प्रचण्ड अग्नि दहका देती, दूसरी ओर पण्डित देवदत्तपर निष्ठुरता और स्वार्थ प्रियताका दोषारोपण कराती। फल यह हुआ कि मनोमालिन्य दिनों दिन बढ़ता ही गया।

५

गोदावरीने धीरे धीरे पण्डितजीसे गोमतीकी बातचीत करनी छोड़ दी, मानो उसके निकट गोमती घरमें थी ही नहीं। न उसके खाने पीनेकी वह सुधि लेती, न कपड़े लत्तेकी। एक बार कई दिनोंतक उसे जलपानके लिये कुछ भी न मिला। पण्डितजी तो आलसी जीव थे। वे इन सब अत्याचारोंको देखा करते, पर अपने शांतिसागरमें घोर उपद्रव मच जाने-

के भयसे किसीसे कुछ न कहते। तथापि इस पिछले अन्यायने उनकी महती सहन शक्तिको भी मथ डाला। एक दिन उन्होंने गोदावरीसे डरते-डरते कहा, क्या आजकल जलपानके लिये मिठाई विठाई नहीं आती?

गोदावरीने क्रुद्ध होकर जवाब दिया, तुम लाते ही नहीं तो आवे कहांसे! मेरे कोई नौकर बैठा है!

देवदत्तको गोदावरीके ये कठोर वचन तीरसे लगे। आजतक गोदावरीने उनसे ऐसी रोषपूर्ण बातें कभी न की थीं।

वे बोले, धीरे बोलो, झुझलानेकी तो कोई बात नहीं है। गोदावरीने आँखें नीची करके कहा, मुझे तो जैसा आता है वैसे बोलती हू। दूसरोंकी सी मधुर बोली कहांसे लाऊँ।

देवदत्तने जरा गरम होकर कहा, आजकल मुझे तुम्हारे मिजाजका कुल रङ्ग ही नहीं मालूम होता। बात-बातपर तुम उलझती रहती हो।

गोदावरीका चेहरा क्रोधाग्निसे लाल हो गया। वह बैठी थी खड़ी हो गयी। उसके होंठ फड़कने लगे। वह बोली, मेरी कोई बात अब तुमको क्यों अच्छी लगेगी। अब तो मैं सिरसे पैरतक दोषोंसे भरी हुई हू। अब और लोग तुम्हारे मनका काम करेंगे। मुझसे नहीं हो सकता। यह लो सन्दूककी कुञ्जी। अपने रुपये-पैसे सभालो, यह रोज रोजकी झझट मेरे मानकी नहीं। जबतक निभा, निभाया। अब नहीं निभ सकता।

पण्डित देवदत्त मानों मूर्छित हो गये। जिस शान्ति भङ्गका उन्हें भय था उसने अत्यन्त भयङ्कर रूप धारण करके उनके घरमें प्रवेश किया। वह कुछ भी न बोल सके। इस समय उनके अधिक बोलनेसे बात बढ जानेका भय था। वह बाहर चले आये और सोचने लगे कि मैंने गोदावरीके साथ कौनसा अनुचित व्यवहार किया है। उनके ध्यान में न आया कि गोदावरीके हाथसे निकलकर घरका प्रबन्ध कैसे हो सकेगा। इस थोड़ी-सी आमदनीमें वह न जाने किस प्रकार काम चलाती

थी ? क्या क्या उपाय वह करती थी ? अब न जाने नारायण कैसे पार लगावेंगे। उसे मनाना पड़ेगा, और हो ही क्या सकता है। गोमती भला क्या कर सकती है, सारा बोझ मेरे ही सिर पड़ेगा। मानेगी तो पर मुश्किलसे।

परन्तु पण्डितजीकी ये शुभ कामनाएँ निष्फल हुई। सन्दूककी वह कुञ्जी विषैली नागिनकी तरह वहीं आंगनमें ज्यों-की-त्यों तीन दिनतक पड़ी रही, किसीको उसके निकट जानेका साहस न हुआ। चौथे दिन पण्डितजीने मानों जानपर खेलकर उस कुञ्जीको उठा लिया। उस समय उन्हें ऐसा मालूम हुआ मानो किसीने उनके सिरपर पहाड़ उठाकर रख दिया। आलसी आदमियोंको अपने नियमित मार्गसे तिलभर भी हटना बड़ा कठिन मालूम होता है।

यद्यपि पण्डितजी जानते थे कि मैं अपने दफ्तरके कारण इस कार्यको सभालनेमें असमर्थ हूँ, तथापि उनसे इतनी ढिठाई न हो सकी कि वह कुञ्जी गोमतीको दें। पर यह केवल दिखावा ही भर था। कुञ्जी उन्हींके पास रहती थी, काम सब गोमतीको करना पड़ता था। इस प्रकार गृहस्थीके शासनका अन्तिम साधन भी गोदावरीके हाथसे निकल गया। गृहिणी नामके साथ जो मर्य्यादा और सम्मान था वह भी गोदावरीके पाससे उसी कुञ्जीके साथ चला गया। देखते-देखते घरकी महरी और पड़ोसकी स्त्रियोंके बर्तावमें भी बहुत अन्तर पड़ गया। गोदावरी अब पदच्युता रानीकी तरह थी। उसका अधिकार अब केवल दूसरोंकी सहानुभूतिपर ही रह गया था।

६

गृहस्थीके कामकाजमें परिवर्तन होते ही गोदावरीके स्वभावमें भी एकाएक परिवर्तन हो गया। ईर्षा मनमें रहनेवाली वस्तु नहीं। आठों पहर आस-पड़ोसके घरोंमें यही चर्चा होने लगी। देखो, दुनिया कैसे मतलबकी है। बेचारीने लड़ झगड़कर ब्याह कराया, जान-बूझकर अपने

पैरोंपर कुल्हाड़ी मारी। यहाँतक कि अपने गहने कपड़ेतक उतार दिये। पर अब रोते रोते आचल भींगता है। सौत तो सौत ही है, पतिने भी उसे आखोंसे गिरा दिया। बस, अब दासीकी तरह घरमे पड़ी-पड़ी पेट जिलाया करे। यह जीना भी कोई जीना है?

ये सहानुभूतिपूर्ण बातें सुनकर गोदावरीकी ईर्षाग्नि और भी प्रबल होती जाती थी। उसे इतना न सूझता था कि यह मौखिक समवेदनायें अधिकांशमें उस मनोविकारसे पैदा हुई हैं जिसमे मनुष्योंको दूसरोंकी हानि और दु:खपर हसनेमें विशेष आनन्द आता है।

गोदावरीको जिस बातका पूर्ण विश्वास और पण्डितजीको जिसका बड़ा भय था, वह न हुई। घरके काम-काजमे कोई विघ्न बाधा, कोई रुकावट न पड़ी। हॉ, अनुभव न होनेके कारण पण्डितजीका प्रबन्ध गोदावरीके प्रबन्ध जैसा अच्छा न था। कुछ खर्च ज्यादा पड़ जाता था। पर काम भलीभांति चला जाता था। हा, गोदावरीको गोमतीके सभी काम दोषपूर्ण दिखाई देते थे। ईर्षामे अग्नि है। परन्तु अग्निका गुण उसमें नहीं। वह हृदयको फैलानेके बदले और भी सङ्कीर्ण कर देती है। अब घरमें कुछ हानि हो जानेसे गोदावरीको दु:खके बदले आनन्द होता। बरसातके दिन थे। कई दिनतक सूर्यनारायणके दर्शन न हुए। सन्दूकमें रक्खे हुए कपड़ोंमें फफूदी लग गई। तेलके अचार बिगड़ गये। गोदावरीको यह सब देखकर रत्तीभर भी दु:ख न हुआ। हॉ, दो-चार जली कटी सुनानेका अवसर उसे अवश्य मिल गया। मालकिन ही बनना आता है कि मालकिनका काम करना भी।

पण्डित देवदत्तकी प्रकृतिमें भी अब नया रग नजर आने लगा। जबतक गोदावरी अपनी कार्यपरायणतासे घरका सारा बोझ सम्भाले थी तबतक उनको कभी किसी चीजकी कमी नहीं खली। यहॉतक कि शाक भाजीके लिये भी उन्हे बाजार नहीं जाना पड़ा। पर अब गोदावरी उन्हें दिनमें कई बार बाजार दौड़ते देखती। गृहस्थीका

प्रबन्ध ठीक न रहनेसे बहुधा जरूरी चीजोंके लिये उन्हें बाजार ऐन वक्तपर जाना पड़ता। गोदावरी यह कौतुक देखती और सुना सुनाकर कहती, यही महराज हैं कि एक तिनका उठानेके लिये भी न उठते थे। अब देखती हूँ, दिनमें दस दफे बाजारमें खड़े रहते हैं। अब मैं इन्हें कभी यह कहते नहीं सुनती कि मेरे लिखने पढ़नेमें हर्ज होगा।

गोदावरीको इस बातका एक बार परिचय मिल चुका था कि पण्डितजी बाजार हाटके काममें कुशल नहीं हैं। इसलिये जब उसे कपड़ेकी जरूरत होती तब वह अपने पड़ोसके एक बूढ़े लालासाहबसे मँगवाया करती थी। पण्डितजीको यह बात भूलसी गई थी कि गोदावरीको साड़ियोंकी भी जरूरत पड़ती है। उनके सिरसे तो जितना बोझ कोई हटा दे उतना ही अच्छा था। खुद वे भी वही कपड़े पहनते थे जो गोदावरी मँगाकर उन्हें दे देती थी। पण्डितजीको नये फैशन और नये नमूनोंसे कोई प्रयोजन न था। पर अब कपड़ोंके लिये भी उन्हींको बाजार जाना पड़ता है। एक बार गोमतीके पास साड़ियाँ न थीं। पण्डितजी बाजार गये तो एक बहुत अच्छासा जोड़ा उसके लिये ले आये। बजाजने मनमाने दाम लिये। उधार सौदा लानेमें पण्डितजी जरा भी आगा-पीछा न करते थे। गोमतीने वह जोड़ा गोदावरीको दिखाया। गोदावरीने देखा और मुँह फेरकर रुखाईसे बोली, भला तुमने उन्हें कपड़े लाने तो सिखा दिया। मुझे तो सोलह वर्ष बीत गये, इनके हाथका लाया हुआ एक कपड़ा स्वप्नमें भी पहनना नसीब न हुआ।

ऐसी घटनाएँ गोदावरीकी ईर्षाग्निको और भी प्रज्वलित कर देती थीं। अबतक उसे यह विश्वास था कि पण्डितजी स्वभाव से ही रूखे हैं, [illegible] उसे सन्तोष था। परन्तु अब उनकी ये नयी-नयी तरंगें देखकर उसे मालूम हुआ कि जिस प्रीतिको मैं सैकड़ों यत्न करके भी न पा सकी उसे इस रमणीने केवल अपने यौवनसे जीत लिया। उसे

पैरोंपर कुल्हाड़ी मारी। यहाँतक कि अपने गहने कपड़ेतक उतार दिये। पर अब रोते रोते आंचल भींगता है। सौत तो सौत ही है, पतिने भी उसे आखोंसे गिरा दिया। बस, अब दासीकी तरह घरमें पड़ी-पड़ी पेट जिलाया करे। यह जीना भी कोई जीना है ?

ये सहानुभूतिपूर्ण बातें सुनकर गोदावरीकी ईर्षाग्नि और भी प्रबल होती जाती थी। उसे इतना न सूझता था कि यह मौखिक समवेदनायें अधिकांशमें उस मनोविकारसे पैदा हुई हैं जिसमे मनुष्योंको दूसरोंकी हानि और दु खपर हसनेमें विशेष आनन्द आता है।

गोदावरीको जिस बातका पूर्ण विश्वास और पण्डितजीको जिसका बड़ा भय था, वह न हुई। घरके काम-काजमें कोई विघ्न बाधा, कोई रुकावट न पड़ी। हाँ, अनुभव न होनेके कारण पण्डितजीका प्रबन्ध गोदावरीके प्रबन्ध जैसा अच्छा न था। कुछ खर्च ज्यादा पड़ जाता था। पर काम भलीभाति चला जाता था। हा, गोदावरीको गोमतीके सभी काम दोषपूर्ण दिखाई देते थे। ईर्षामे अग्नि है। परन्तु अग्निका गुण उसमें नहीं। वह हृदयको फैलानेके बदले और भी सङ्कीर्ण कर देती है। अब घरमें कुछ हानि हो जानेसे गोदावरीको दु खके बदले आनन्द होता। बरसातके दिन थे। कई दिनतक सूर्यनारायणके दर्शन न हुए। सन्दूकमें रक्खे हुए कपड़ोंमें फफूदी लग गई। तेलके अचार बिगड़ गये। गोदावरीको यह सब देखकर रत्तीभर भी दु ख न हुआ। हाँ, दो-चार जली कटी सुनानेका अवसर उसे अवश्य मिल गया। मालकिन ही बनना आता है कि मालकिनका काम करना भी।

पण्डित देवदत्तकी प्रकृतिमें भी अब नया रग नजर आने लगा। जबतक गोदावरी अपनी कार्यपरायणतासे घरका सारा बोझ सम्भाले थी तबतक उनको कभी किसी चीजकी कमी नहीं खली। यहाँतक कि शाक भाजीके लिये भी उन्हे बाजार नहीं जाना पड़ा। पर अब गोदावरी उन्हें दिनमें कई बार बाजार दौड़ते देखती। गृहस्थीका

प्रबन्ध ठीक न रहनेसे बहुधा जरूरी चीजोंके लिये उन्हें बाजार ऐन वक्तपर जाना पड़ता। गोदावरी यह कौतुक देखती और सुना सुनाकर कहती, यही महराज हैं कि एक तिनका उठानेके लिये भी न उठते थे। अब देखती हूँ, दिनमें दस दफे बाजारमें खड़े रहते हैं। अब मैं इन्हें कभी यह कहते नहीं सुनती कि मेरे लिखने पढ़नेमें हर्ज होगा।

गोदावरीको इस बातका एक बार परिचय मिल चुका था कि पण्डितजी बाजार हाटके काममें कुशल नहीं हैं। इसलिये जब उसे कपड़ेकी जरूरत होती तब वह अपने पड़ोसके एक बूढ़े लालासाहबसे मँगवाया करती थी। पण्डितजीको यह बात भूलसी गई थी कि गोदावरीको साड़ियोंकी भी जरूरत पड़ती है। उनके सिरसे तो जितना बोझ कोई हटा दे उतना ही अच्छा था। खुद वे भी वही कपड़े पहनते थे जो गोदावरी मँगाकर उन्हें दे देती थी। पण्डितजीको नये फैशन और नये नमूनोंसे कोई प्रयोजन न था। पर अब कपड़ोंके लिये भी उन्हींको बाजार जाना पड़ता है। एक बार गोमतीके पास साड़ियाँ न थीं। पण्डितजी बाजार गये तो एक बहुत अच्छा सा जोड़ा उसके लिये ले आये। बजाजने मनमाने दाम लिये। उधार सौदा लानेमें पण्डितजी जरा भी आगापीछा न करते थे। गोमतीने वह जोड़ा गोदावरीको दिखाया। गोदावरीने देखा और मुँह फेरकर रुखाईसे बोली, भला तुमने उन्हें कपड़े लाने तो सिखा दिया। मुझे तो सोलह वर्ष बीत गये, उनके हाथका लाया हुआ एक कपड़ा स्वप्नमें भी पहनना नसीब नहीं हुआ।

ऐसी घटनाएँ गोदावरीकी ईर्षाग्निको और भी प्रज्वलित कर देती थीं। जबतक उसे यह विश्वास था कि पण्डितजी स्वभावसे ही रूखे हैं तबतक उसे सन्तोष था। परन्तु अब उनकी ये नयी-नयी तरंगें देखकर उसे मालूम हुआ कि जिस प्रीतिको मैं सैकड़ों यत्न करके भी न पा सकी उसे इस रमणीने केवल अपने यौवनसे जीत लिया। उसे

अब निश्चय हुआ कि मैं जिसे सच्चा प्रेम समझ रही थी वह वास्तवमें कपटपूर्ण था। वह निरा स्वार्थ था।

दैवयोगसे इन्हीं दिनों गोमती बीमार पडी। उसे उठने-बैठनेकी भी शक्ति न रही। गोदावरी रसोई बनाने लगी, पर उसे इसका निश्चय नहीं था कि गोमती वास्तवमें बीमार है। उसे यही ख्याल था कि मुझसे खाना पकवानेके लिये ही दोनों प्राणियोंने यह स्वांग रचा है। पडोसकी स्त्रियोंसे वह कहती कि लौंडी बननेमें इतनी ही कसर थी, वह भी पूरी हो गई।

पण्डितजीको आजकल खाना खाते वक्त भागा-भागसी पड जाती है। वे न जाने क्यों गोदावरीसे एकान्तमें बातचीत करते डरते हैं। न मालूम कैसी कठोर और हृदय विदारक बातें वह सुनाने लगे। इसीलिये खाना खाते वक्त वे डरते रहते थे कि कहीं उस भयंकर समयका आगमन न हो जाय। गोदावरी अपने तीव्र नेत्रोंसे उनके मनका यह भाव ताड जाती थी, पर मन ही मनमें ऐंठकर रह जाती थी।

एक दिन उससे न रहा गया। वह बोली, क्या मुझसे बोलनेकी भी मनाही कर दी गई है? देखती हूं कहीं तो रात-रात भर बातोंका तार नहीं टूटता, पर मेरे सामने मुंह न खोलनेकी भी कसम सी खाई है। घरका रंग ढंग देखते हो न? अब तो सब काम तुम्हारे इच्छानुसार चल रहा है न?

पण्डितजीने सिर नीचा किये हुए उत्तर दिया, ऊँह! जैसे चलता है, वैसे चलता है। उस फिक्रसे क्या अपनी जान दे दूं? जब तुम यह चाहती हो कि घर मिट्टीमें मिल जाय तब फिर मेरा क्या वश है?

इसपर गोदावरीने बडे कठोर वचन कहे। बात बढ गई। पण्डितजी चौकेपरसे उठ आए। गोदावरीने कसम दिलाकर उन्हें बिठाना चाहा पर वे वहाँ क्षणभर भी न रुके। तब उसने भी रसोई उठा दी। सारे घरको उपवास करना पडा।

गोमतीमें एक विचित्रता यह थी कि वह कहीसे कड़ी बातें सहन कर सकती थी। पर भूख सहन करना उसके लिये बड़ा कठिन था। इसलिये कोई व्रत भी न रखती थी। हॉ, कहने-सुननेको जन्माष्टमी रख लेती थी। पर आजकल बीमारीके कारण उसे और भी भूख लगती थी। जब उसने देखा कि दोपहर होनेको आई और भोजन मिलनेके कोई लक्षण नहीं, तब विवश होकर बाजारसे मिठाई मगवाई। संभव है. उसने गोदावरीको जलानेके लिये ही यह खेल खेला हो, क्योंकि कोई भी एक वक्त खाना न खानेसे मर नहीं जाता। गोदावरीके सिरसे पैर तक आग लग गई। उसने भी तुरन्त मिठाइया मगवाई। कई वर्षके बाद आज उसने पेटभर मिठाइयाँ खाई। ये सब ईर्षाके कौतुक हैं।

जो गोदावरी दोपहरके पहले मुहमें पानी नहीं डालती थी वही अब प्रात.काल ही कुछ जलपान किये बिना नहीं रह सकती। सिरमें वह हमेशा मीठा तेल डालती थी, पर अब मीठे तेलसे उसके सिरमें पीडा होने लगती थी, पान खानेका उसे नया व्यसन लग गया। ईर्षाने उसे नयी नवेली बहू बना दिया।

जन्माष्टमीका शुभ दिन आया। पण्डितजीका स्वाभाविक आलस्य इन दो तीन दिनोंके लिये गायब हो जाता था। वे बड़े उत्साहसे झाकी बनानेमें लग जाते थे। गोदावरी यह व्रत बिना जलके रखती थी और पण्डितजी तो कृष्णके उपासक ही थे। अब उनके अनुरोधसे गोमतीने भी निर्जल व्रत रखनेका साहस किया, पर उसे बड़ा आश्चर्य आ सब महरीने आकर उससे कहा, बडी बहू निर्जल न रहेंगी, उनके लिये फलाहार मगा दो।

सन्ध्या समय गोदावरीने मान मन्दिर जानेके लिये इक्केकी फरमाइश की। गोमतीको यह फरमाइश बुरी मालूम हुई। आजके दिन इक्केका किराया बहुत बढ़ जाता था। मान मन्दिर कुछ दूर भी नहीं था। इससे वह चिढ़कर बोली—व्यर्थ रुपया क्यों फेंका जाय? मदिर

कौन बड़ी दूर है। पाँव पाँव क्यों नहीं चली जातीं? हुक्म चला देना तो सहज है। असरता उसे है जो बैलकी तरह कमाता है।

तीन साल पहले गोमतीने इसी तरहकी बातें गोदावरीके मुंहसे सुनी थीं। आज गोदावरीको भी गोमतीके मुँहसे वैसी ही बातें सुननी पड़ीं। समयकी गति!

इन दिनों गोदावरी बड़े उदासीन भावसे खाना बनाती थी। पण्डितजीके पथ्यापथ्यके विषयमें भी अब उसे पहलेकी सी चिन्ता न थी। एक दिन उसने महरीसे कहा कि अन्दाजसे मसाले निकालकर पीस ले, मसाले दालमें पड़े तो मिर्च जरा अधिक तेज हो गई। मारे भयके पण्डितजीसे वह न खाई गई। अन्य आलसी मनुष्योंकी तरह चटपटी वस्तुएँ उन्हें भी बहुत प्रिय थीं, परन्तु वे रोगसे हारे हुए थे। गोमतीने जब यह सुना तब भौंह चढ़ाकर बोली, क्या बुढ़ापेमें जबान गजभरकी हो गई है?

कुछ इसी तरहके कटु-वाक्य एक बार गोदावरीने भी कहे थे। आज उसकी बारी सुननेकी थी।

७

आज गोदावरी गङ्गासे गले मिलने आई है। तीन साल हुए वह वर और वधूको लेकर गंगाजीको पुष्प और दूध चढ़ाने गई थी। आज वह अपने प्राण समर्पण करने आई है। आज वह गंगाजीकी आनन्द मयी लहरोंमें विश्राम करना चाहती है।

गोदावरीको अब उस घरमें एक क्षण रहना भी दुस्सह हो गया था। जिस घरमें रानी बनकर रही उसीमें चेरी बनकर रहना उस जैसी सगर्वा स्त्रीके लिये असम्भव था।

अब इस घरमें गोदावरीका स्नेह उस पुरानी रस्सीकी तरह था जो

बराबर गाँठ देनेपर भी कहीं-न कहींसे टूट ही जाती है। उसे गङ्गाजी-की शरण लेनेके सिवाय और कोई उपाय न सूझता था।

कई दिन हुए, उसके मुँहसे बार बार जान दे देनेकी धमकी सुन पण्डितजी खिजलाकर बोल उठे थे, तुम किसी तरह मर भी तो जाती। गोदावरी उन विष भरे शब्दोंको अबतक न भूली थी। चुभनेवाली बातें उसको कभी न भूलती थीं। आज गोमतीने भी वही बातें कहीं, यद्यपि उसने बहुत कुछ सहन करनेके पीछे कठोर बातें कही थीं तथापि गोदा-वरीको अपनी बातें तो भूल-सी गई थीं। केवल गोमती और पण्डितजीके वाक्य ही उसके कानोंमें गूँज रहे थे। पण्डितजीने उसे डाँटातक नहीं। मुझपर ऐसा घोर अन्याय और वे मुँहतक न खोलें।

आज सब लोगोंके सो जानेपर गोदावरी घरसे बाहर निकली, आकाशमें काली घटाएँ छाई हुई थीं। वर्षाकी झड़ी लग रही थी। उधर उसके नेत्रोंसे भी आँसुओंकी धारा बह रही थी। प्रेमका बन्धन कितना कोमल है और दृढ भी कितना! कोमल है अपमानके सामने दृढ है वियोग के सामने। गोदावरी चौखटपर खड़ी-खड़ी घण्टों रोती रही, कितनी ही पिछली बातें याद आती थीं। हा! कभी यहा उसके लिये प्रेम भी था, मान भी था, जीवनका सुख भी था। शीघ्र ही पण्डित-जीके वे कठोर शब्द भी उसे याद आ गये। आँखोंसे फिर पानीकी धारा बहने लगी। गोदावरी घरसे चल खड़ी हुई।

इस समय यदि पण्डित देवदत्त नगे सिर, नगे पाँव पानीमें भीगते, दौड़ते आते और गोदावरीके कम्पित हाथोंको पकड़कर अपने धड़कते हुए हृदयसे उसे लगाकर कहते, "प्रिये!" इससे अधिक और उनके मुँहसे कुछ भी न निकलता, तो भी क्या गोदावरी अपने विचारोंपर स्थिर रह सकती?

कुआरका महीना था। रातको गङ्गाकी लहरोंकी गरज बड़ी भया-नक मालूम होती थी साथ ही जब बिजली तड़प जाती तब उसकी

उछलती हुई लहरें प्रकाशमे उज्ज्वल हो जाती थीं। मानों प्रकाश उन्मत्त हाथीका रूप धारण कर किलोलें कर रहा हो। जीवन-संग्रामका एक विशाल दृश्य आँखोंके सामने आ रहा था।

गोदावरीके हृदयमें भी इस समय विचारकी अनेक लहरें बडे वेगमे उठतीं, आपसमें टकराती और ऐंठती हुई लोप हो जाती थीं। कहाँ? अन्धकारमे।

क्या यह गरजने उमडनेवाली गङ्गा गोदावरीको शांति प्रदान कर सकती है? उसकी लहरोंमें सुधामय मधुर ध्वनि नहीं है और न उसमें करुणाका विकास ही है। वह इस समय उद्दण्डता और निर्दयताकी भीषण मूर्ति धारण किये हुए है।

गोदावरी किनारे बैठी क्या सोच रही थी, कौन कह सकता है? क्या अब उसे यह खटका नहीं लगा था कि पण्डित देवदत्त आते न होंगे? प्रेमका बन्धन कितना मजबूत होता है!

उसी अन्धकारमे ईर्षा, निष्ठुरता और नैराश्यकी सताई हुई वह अबला गंगाकी गोदमें गिर पडी! लहरें झपटीं और उसे निगल गईं!!!

सवेरा हुआ। गोदावरी घरमें नहीं थी। उसकी चारपाईपर यह पत्र पडा हुआ था—

"स्वामिन्, संसारमें सिवाय आपके मेरा और कौन स्नेही था? मैंने अपना सर्वस्व आपके सुखकी भेंट कर दिया। अब आपका सुख इसीमें है कि मैं इस संसारसे लोप हो जाऊँ। इसलिये ये प्राण आपकी भेंट हैं। मुझसे जो कुछ अपराध हुए हों, क्षमा कीजियेगा। ईश्वर सदा आपको सुखी रक्खें।"

पण्डितजी इस पत्रको देखते ही मूर्छित होकर गिर पडे। गोमती रोने लगी। पर क्या वे उसके विलापके आँसू थे?!

# सज्जनताका दण्ड

१

साधारण मनुष्यकी तरह शाहजहापुरके डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर सरदार शिवसिंहमें भी भलाइया और बुराइया दोनों ही वर्त्तमान थीं। भलाई यह थी कि उनके यहा न्याय और दयामें कोई अन्तर न था। बुराई यह थी कि वे सर्वथा निर्लोभ और निःस्वार्थ थे। भलाईने मातहतोंको निडर और आलसी बना दिया था, बुराईके कारण उस विभागके सभी अधिकारी उनकी जानके दुश्मन बन गये थे।

प्रातःकालका समय था। वे किसी पुलकी निगरानीके लिये तैयार खड़े थे। मगर साईस अभीतक मीठी नींद ले रहा था। रातको उसे अच्छी तरह सहेज दिया गया था कि पौ फटनेके पहले गाडी तैयार कर लेना। लेकिन सुबह भी हुई, सूर्य भगवान्‌ने दर्शन भी दिये, शीतल किरणोंमें गरमी भी आई, पर साईसकी नींद अभीतक नहीं टूटी।

सरदार साहब खड़े खड़े थककर एक कुर्सीपर बैठ गये। साईस तो किसी तरह जागा, परन्तु अर्दलीके चपरासियोंका पता नहीं। जो महाशय डाक लेने गये थे वे एक ठाकुरद्वारामें खड़े चरणामृतकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जो ठेकेदारको बुलाने गए थे वे बाबा रामदासकी सेवामें बैठे गॉजेका दम लगा रहे थे।

धूप तेज होती जाती थी। सरदार साहब झुझलाकर मकानमें चले गए और अपनी पत्नीसे बोले, इतना दिन चढ आया, अभीतक एक चपरासीका भी पता नहीं। इनके मारे तो मेरे नाकमें दम आ गया है।

पत्नीने दीवारकी ओर देखकर दीवारसे कहा, यह सब उन्हे सिर चढानेका फल है।

सरदार साहब चिढकर बोले, तो क्या करू, उन्हें फॉसी दे दूँ?

२

सरदार साहबके पास मोटरकारका तो कहना ही क्या, कोई फिटिन भी न थी। वे अपने इक्केसे ही प्रसन्न थे, जिसे उनके नौकर-चाकर अपनी भाषामें उडनखटोला कहते थे। शहरके लोग उसे इतना आदर-सूचक नाम न देकर छकडा कहना ही उचित समझते थे। इसी तरह सरदार साहब अन्य व्यवहारोंमें भी बडे मितव्ययी थे। उनके दो भाई इलाहाबादमें पढते थे। विधवा माता बनारसमें रहती थीं। एक विधवा बहिन भी उन्हींपर अवलम्बित थी। इनके सिवा कई गरीब लडकोंको छात्रवृत्तियाँ भी देते थे। इन्हीं कारणोंसे वे सदा खाली हाथ रहते। यहाँतक कि उनके कपडोंपर भी इस आर्थिक दशाके चिह्न दिखाई देते थे। लेकिन यह सब कष्ट सहकर भी वे लोभको अपने पास फटकने न देते थे। जिन लोगोंपर उनका स्नेह था वे उनकी सज्जनताको सराहते थे और उन्हें देवता समझते थे। उनकी सज्जनतासे उन्हें कोई हानि न होती थी, लेकिन जिन लोगोंसे उनके व्यावसायिक सम्बन्ध थे वे उनके सद्भावोंके ग्राहक न थे, क्योंकि उन्हें हानि होती थी। यहाँतक कि उन्हें अपनी सहधर्मिणीसे भी कभी-कभी अप्रिय बातें सुननी पड़ती थीं।

एक दिन वे दफ्तरसे आए तो उनकी पत्नीने स्नेहपूर्ण ढंगसे कहा, तुम्हारी यह सज्जनता किस काम की, जब सारा संसार तुमको बुरा कह रहा है।

सरदार साहबने दृढतासे जवाब दिया, संसार जो चाहे कहे परमात्मा तो देखता है।

रामाने यह जवाब पहले ही सोच लिया था। वह बोली, मैं तुमसे विवाद तो करती नहीं, मगर जरा अपने दिलमें विचार करके देखो कि तुम्हारी इस सचाईका दूसरोंपर क्या असर पडता है? तुम तो अच्छा वेतन पाते हो। तुम अगर हाथ न बढाओ तो तुम्हारा

निर्वाह हो सकता है। रूखी रोटियाँ मिल ही जायँगी। मगर ये दस दस पाँच पाँच रुपयेके चपरासी, मुहर्रिर, दफ्तरी बेचारे कैसे गुजर करें। उनके भी बाल-बच्चे हैं। उनके भी कुटुम्ब परिवार है। शादी गमी, तिथि त्योहार, यह सब उनके साथ लगे हुए हैं। भलमनसी का भेष बनाए बिना काम नहीं चलता। बताओ उनका गुजर कैसे हो? अभी रामदीन चपरासीकी घरवाली आई थी, रोते रोते आँचल भींगता था। लड़की सयानी हो गई है। अब उसका व्याह करना पड़ेगा। ब्राह्मणकी जाति, हजारोंका खर्च। बताओ उसके आसूँ किसके सिर पड़ेंगे?

ये सब बातें सच थीं। इनमें सरदार साहबको इनकार नहीं हो सकता था। उन्होंने स्वयं इस विषयमें बहुत कुछ विचार किया था। यही कारण था कि वह अपने मातहतोंके साथ बड़ी नरमीका व्यवहार करते थे। लेकिन सरलता और शालीनताका आत्मिक गौरव चाहे जो हो, उनका आर्थिक मोल बहुत कम है। वे बोले, तुम्हारी बातें सब यथार्थ हैं, किन्तु मैं विवश हूं। अपने नियमोंको कैसे तोड़ूं? यदि मेरा वश चले तो मैं उन लोगोंका वेतन बढ़ा दूँ। लेकिन यह नहीं हो सकता कि मैं खुद लूट मचाऊँ और उन्हें लूटने दूँ।

रामाने व्यंगपूर्ण शब्दोंमें कहा, तो यह हत्या किसपर पड़ेगी।

सरदार साहबने तीव्र होकर उत्तर दिया, यह उन लोगोंपर पड़ेगी जो अपनी हैसियत और आमदनीसे अधिक खर्च करना चाहते हैं। अरदली बनकर क्यों वकीलके लड़केसे लड़की व्याहनेकी ठानते हैं। दफ्तरीको यदि टहलुवेकी जरूरत हो तो यह किसी पाप-कार्यसे कम नहीं। मेरे साईसकी स्त्री अगर चाँदीकी सिल गलेमें डालना चाहे तो यह उसकी मूर्खता है। इस झूठी बड़ाईका उत्तरदाता मैं नहीं हो सकता।

२

इञ्जिनियरोंका ठेकेदारोंसे कुछ ऐसा ही सम्बन्ध है जैसा मधु-

मक्खियोंका फूलोंसे। अगर वे अपने नियत भागमे अधिक पानेकी चेष्टा न करें तो उनसे किसीको शिकायत नहीं हो सकती। यह मधु रस कमीशन कहलाता है। रिश्वत और कमीशनमें बडा अन्तर है। रिश्वत लोक और परलोक दोनोका सर्वनाश कर देती है। उसमें भय है, चोरी है, बदनामी है। मगर कमीशन एक मनोहर वाटिका है, जहाँ न मनुष्यका डर है, न परमात्माका भय, यहाँ तक कि वहा आत्माकी छिपी हुई चुटकियोंका भी गुजर नहीं है। और कहाँतक कहें इसकी ओर बदनामी आँख भी नहीं उठा सकती। यह वह बलिदान है जो हत्या होते हुए भी धर्मका एक अश है। ऐसी अवस्थामें यदि सरदार शिवसिंह अपने उज्ज्वल चरित्रको इस धब्बेसे साफ रखते थे और उसपर अभिमान करते थे तो वे क्षमाके पात्र थे।

मार्चका महीना बीत रहा था। चीफ इञ्जिनियर साहब जिलेमें मुआइना करने आ रहे थे! मगर अभीतक इमारतोंका काम अपूर्ण था। सडकें खराब हो रही थीं, ठेकेदारोंने मिट्टी और ककड भी नहीं जमा किये थे।

सरदार साहब रोज ठेकेदारोंको ताकीद करते थे, मगर इसका कुछ फल न होता था।

एक दिन उन्होंने सबको बुलाया। वे कहने लगे, तुम लोग क्या यही चाहते हो कि मैं इस जिलेसे बदनाम होकर जाऊँ? मैंने तुम्हारे साथ कोई बुरा सलूक नहीं किया। मैं चाहता तो आपसे काम छीनकर खुद करा लेता, मगर मैंने आपको हानि पहुँचाना उचित न समझा। उसकी मुझे यह सजा मिल रही है। खैर!

ठेकेदार लोग यहाँसे चले तो बातें होने लगीं। मिस्टर गोपालदास बोले, अब आटे दालका भाव मालूम हो जायगा।

शहबाज खाँने कहा, किसी तरह इसका जनाजा निकले तो यहाँसे

सेठ चुन्नीलालने फरमाया, इञ्जिनियरसे मेरी जान पहचान है, मैं उनके साथ काम कर चुका हूँ। वह इन्हें खूब लथेड़ेगा।

इसपर वृढे हरिदासने उपदेश दिया, यारो स्वार्थकी बात और है। नहीं तो यह सच है कि यह मनुष्य नहीं, देवता है। भला और नहीं तो सालभरमें कमीशनके १० हजार तो होते होंगे। इतने रुपयोंको ठीकरेकी तरह तुच्छ समझना क्या कोई सहज बात है? एक हम हैं कि कौड़ियोंके पीछे ईमान बेचते फिरते हैं। जो सज्जन पुरुष हमसे एक पाईका रवादार न हो, सब प्रकारके कष्ट उठाकर भी जिसकी नीयत डावाँडोल न हो, उसके साथ ऐसा नीच और कुटिल बर्ताव करना पड़ता है। इसे अपने अभाग्यके सिवा और क्या समझें।

शहबाज खाने फरमाया—हा, इसमें तो कोई शक नहीं कि यह शख्स नेकीका फरिश्ता है।

सेठ चुन्नीलालने गम्भीरतासे कहा, खाँ साहब! बात तो वही है, जो तुम कहते हो। लेकिन किया क्या जाय? नेकनीयतीसे तो काम नहीं चलता। यह दुनिया तो छल कपटकी है।

मिस्टर गोपालदास बी० ए० पास थे। वे गर्वके साथ बोले, इन्हें जब इस तरह रहना था तो नौकरी करनेकी क्या जरूरत थी? यह कौन नहीं जानता कि नीयतको साफ रखना अच्छी बात है। मगर यह भी तो देखना चाहिये कि इसका दूसरोंपर क्या असर पड़ता है। हमको तो ऐसा आदमी चाहिये कि जो खुद खाय और हमें भी खिलावे। खुद हलुवा खाय, हमें रूखी रोटियाँ ही खिलावे। वह अगर एक रुपया कमीशन लेगा तो उसकी जगह पाँचका फायदा करा देगा। इन महाशयके यहा क्या है? इसलिए आप जो चाहें कहें, मेरी तो कभी इनसे निभ नहीं सकती।

शहबाज खाँ बोले, हा नेक और पाक साफ रहना जरूर अच्छी चीज है, मगर ऐसी नेकी हीसे क्या जो दूसरोंकी जान ही ले ले।

बूढे हरदासकी बातोंको जिन लोगोंने पुष्टि कीथी वे सब गोपाल-दासकी हाँ में-हाँ मिलाने लगे। निर्बल आत्माओंमें सचाईका प्रकाश जुगनूकी चमक है।

४

सरदार साहबकी एक पुत्री थी। उसका विवाह मेरठके एक वकीलके लड़केसे ठहरा था। लड़का होनहार था। जाति कुल ऊंचा था। सरदार साहबने कई महीनेकी दौड़ धूपमें इस विवाहको तै किया था। और सब बातें तै हो चुकी थीं, केवल दहेजका निर्णय नहीं हुआ था। आज वकील साहबका एक पत्र आया। उसने इस बातका भी निश्चय कर दिया, मगर विश्वास, आशा और वचनके बिलकुल प्रतिकूल। पहले वकील साहबने एक जिलेके इंजिनियरके साथ किसी प्रकारका ठहराव व्यर्थ समझा। बड़ी सस्ती उदारता प्रकट की। इस लज्जित और घृणित व्यवहार पर खूब आंसू बहाये। मगर जब ज्यादा पूछ-ताछ करनेपर सरदार साहबके धन वैभवका भेद खुल गया तब दहेजका ठहराना आवश्यक हो गया। सरदार साहबने आशंकित हाथोंसे पत्र खोला। पांच हजार रुपयेसे कमपर विवाह नहीं हो सकता। वकील साहबको बहुत खेद और लज्जा थी कि वे इस विषयमें स्पष्ट होनेपर मजबूर किये गये। मगर वे अपने खानदानके कई बूढे, खुर्राट, विचारहीन, स्वार्थान्ध महात्माओंके हाथों बहुत तंग थे। उनका कोई वश न था। इंजिनियर साहबने एक लम्बी साँस खींची। सारी आशाएं मिट्टी में मिल गयीं। सोचते थे, क्या हो गया। विकल होकर कमरेमें टहलने लगे।

उन्होंने जरा देर पीछे पत्रको उठा लिया और अन्दर चले गये। विचारा कि यह पत्र रामाको सुनावें मगर फिर ख्याल आया कि यहां सहानुभूतिकी कोई आशा नहीं। क्यों अपनी निर्बलता दिखाऊँ?

क्यों मूर्ख बनूँ ? वह विना तानोंके बात न करेगी। यह सोचकर वे आँगनसे लौट गये।

सरदार साहब स्वभावके बड़े दयालु थे और कोमल हृदय आपत्तियों-में स्थिर नहीं रह सकता। वे दुःख और ग्लानिसे भरे हुए सोच रहे थे कि मैंने ऐसे कौनसे बुरे काम किये हैं जिनका मुझे यह फल मिल रहा है। बरसोंकी दौड़-धूपके बाद जो कार्य सिद्ध हुआ था वह क्षणमात्र में नष्ट हो गया। अब वह मेरी सामर्थ्यसे बाहर है। मैं उसे नहीं सम्हाल सकता। चारों ओर अन्धकार है। कहीं आशाका प्रकाश नहीं। उनके नेत्र सजल हो गये।

सामने मेजपर ठेकेदारोंके बिल रखे हुए थे। वे कई सप्ताहोंसे यों ही पड़े थे। सरदार साहबने उन्हें खोल कर भी न देखा था। आज इस आत्मिक ग्लानि और नैराश्यकी अवस्थामें उन्होंने इन बिलोंको सतृष्ण आँखोंसे देखा। जरासे इशारेपर ये सारी कठिनाइयाँ दूर हो सकती हैं। चपरासी और क्लर्क केवल मेरी सम्मतिके सहारे सब कुछ कर लेंगे। मुझे जबान हिलानेकी भी जरूरत नहीं। न मुझे लज्जित ही होना पड़ेगा। इन विचारोंका इतना प्राबल्य हुआ कि वे वास्तवमें बिलोंको उठाकर गौरसे देखने और हिसाब लगाने लगे कि उनमें कितनी निकासी हो सकती है।

मगर शीघ्र ही आत्माने उन्हें जगा दिया—आह! मैं किस भ्रममें पड़ा हुआ हूँ ? क्या उस आत्मिक पवित्रताको, जो मेरी जन्म भरकी कमाई है, केवल थोड़ेसे धनपर अर्पण कर दूँ ? जो मैं अपने सहकारियों के सामने गर्वसे सिर उठाये चलता था, जिससे मोटरकारवाले भ्रातृगण आँखें नहीं मिला सकते थे, वही मैं आज अपने उस सारे गौरव और मानको, अपनी सम्पूर्ण आत्मिक सम्पत्तिको दस पाँच हजार रुपयोंपर त्याग दूँ ? ऐसा कदापि नहीं हो सकता।

तब इस कुविचारको परास्त करनेके लिये, जिसने क्षणमात्रके

लिये उनपर विजय पा ली थी, वे उस सुनसान कमरेमें जोरसे ठठाकर हँसे। चाहे यह हँसी उन खिलौने और कमरेकी दीवारोंने सुनी हो, चाहे न सुनी हो, मगर उनकी आत्माने अवश्य सुनी। उस आत्माको एक कठिन परीक्षासे पार पानेपर परम आनन्द हुआ।

सरदार साहबने उन खिलौंको उठाकर मेजके नीचे डाल दिया। फिर उन्हें पैरोंसे कुचला। तब इस विजयपर मुस्कुराते हुए वे अन्दर गये।

५

बड़े इञ्जिनियर साहब नियत समयपर शाहजहाँपुर आये। उनके साथ सरदार साहबका दुर्भाग्य भी आया। जिलेके सारे काम अधूरे पड़े हुए थे। उनके खानसामाने कहा, हुजूर! काम कैसे पूरा हो? सरदार साहब ठेकेदारोंको बहुत तंग करते हैं। हेड क्लर्कने दफ्तरके हिसाबको भ्रम और भूलोंसे भरा हुआ पाया। उन्हें सरदार साहबकी तरफसे न कोई दावत दी गई न कोई भेंट। तो क्या वे सरदार साहबके कोई नातेदार थे जो गलतियाँ न निकालते।

जिलेके ठेकेदारोंने एक बहुमूल्य डाली सजाई और उसे बड़े इञ्जिनियर साहबकी सेवामें लेकर हाजिर हुए। वे बोले, हुजूर, चाहे गुलामोंको गोली मार दें, मगर सरदार साहबका अन्याय अब नहीं सहा जाता। कहनेको तो कमीशन नहीं लेते मगर सच पूछिये तो जान ले लेते हैं।

चीफ इञ्जिनियर साहबने मुआइनेकी किताबमें लिखा, "सरदार शिवसिंह बहुत ईमानदार आदमी हैं। उनका चरित्र उज्ज्वल है, मगर वे इतने बड़े जिलेके कार्यका भार नहीं सम्भाल सकते।"

परिणाम यह हुआ कि वे एक छोटे जिलेमें भेज दिये गये और उनका दरजा भी घटा दिया गया।

सरदार साहबके मित्रों और स्नेहियोंने बड़े समारोहसे एक जलसा किया। उसमें उनकी धर्मनिष्ठा और स्वतन्त्रताकी प्रशंसा की। सभापतिने

सजलनेत्र होकर कम्पित स्वरमें कहा, सरदार साहबके वियोगका दुःख हमारे दिलमें सदा खटकता रहेगा। यह घाव कभी न भरेगा।

मगर "फेयरवेल डिनर" में यह बात सिद्ध हो गई कि स्वादिष्ट पदार्थोंके सामने वियोगका दुःख दुस्सह नहीं।

यात्राके सामान तैयार थे। सरदार साहब जलसेसे आये तो रामाने उन्हें बहुत उदास और मलिन मुख देखा। उसने बार बार कहा था कि बड़े इञ्जिनियरके खानसामाको इनाम दो, हेड क्लर्ककी दावत करो; मगर सरदार साहबने उसकी बात न मानी थी। इसलिये जब उसने सुना कि उनका दरजा घटा और बदली भी हुई तब उसने बड़ी निर्दयतासे अपने व्यंग बाण चलाये। मगर इस वक्त उन्हें उदास देखकर उससे न रहा गया। बोली, क्यों इतने उदास हो? सरदार साहबने उत्तर दिया क्या करूँ हँसूँ? रामाने गम्भीर स्वरसे कहा, हँसना ही चाहिये। रोये तो वह जिसने कौड़ियोंपर अपनी आत्मा भ्रष्ट की हो—जिसने रुपयोंपर अपना धर्म बेचा हो। यह बुराईका दण्ड नहीं है। यह भलाई और सज्जनताका दण्ड है। इसे सानन्द झेलना चाहिये।

यह कहकर उसने पतिकी ओर देखा तो नेत्रोंमें सच्चा अनुराग भरा हुआ दिखाई दिया। सरदार साहबने भी उसकी ओर स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखा। उनकी हृदये-श्वरीका मुखारविन्द सच्चे आमोदसे विकसित था। उसे गले लगा कर वे बोले, रामा! मुझे तुम्हारी ही सहानुभूतिकी जरूरत थी अब मैं इस दण्डको हर्षसे सहूँगा।

---

# पंच परमेश्वर

१

जुम्मन शेख और अलगू चौधरीमें गाढ़ी मित्रता थी। साझेमें खेती होती थी। कुछ लेन देनमें भी साझा था। एकको दूसरेपर अटल विश्वास था। जुम्मन जब हज करने गये थे तब अपना घर अलगूको सौंप गये थे और अलगू जब कभी बाहर जाते, तब जुम्मनपर अपना घर छोड़ जाते थे। उनमें न खान पानका व्यवहार था, न धर्मका नाता, केवल विचार मिलते थे। मित्रताका मूलमन्त्र भी यही है।

इस मित्रताका जन्म उसी समय हुआ जब दोनों मित्र बालक ही थे और जुम्मनके पूज्य पिता जुमराती उन्हें शिक्षा प्रदान करते थे। अलगूने गुरुजीकी बहुत सेवा की--खूब रिकाबियाँ माँजी, खूब प्याले धोये। उनका हुक्का एक क्षणके लिये भी विश्राम न लेने पाता था, क्योंकि प्रत्येक चिलम अलगूको आध घण्टेतक किताबोंसे मुक्त कर देती थी, अलगूके पिता पुराने विचारोंके मनुष्य थे। शिक्षाकी अपेक्षा उन्हे गुरुकी सेवा-शुश्रूषापर अधिक विश्वास था। वे कहते थे कि विद्या पढनेसे नहीं आती, जो कुछ होता है, गुरुके आशिर्वादसे होता है। बस गुरुजीकी कृपा-दृष्टि चाहिये। अतएव यदि अलगूपर जुमराती शेखके आशीर्वाद अथवा सत्संगका कुछ फल न हुआ तो वह यह मानकर सन्तोष कर लेगा कि विद्योपार्जनमें मैने यथाशक्ति कोई बात उठा नहीं रखी, विद्या इसके भाग्य हीमें न थी तो कैसे आती?

मगर जुमराती शेख स्वयं आशीर्वादके कायल न थे। उन्हें अपने

सोटेपर अधिक भरोसा था और इसी सोटेके प्रतापसे आज आसपासके गावोंमें जुम्मनकी पूजा होती थी। उनके लिखे हुए रिहननामे या बैनामे-पर कचहरीका मुहर्रिर भी कलम न उठा सकता था। हल्केका डाकिया, कास्टेबिल और तहसीलका चपरासी—सब उनकी कृपाकी आकांक्षा करते थे। अतएव अलगूका मान उनके धनके कारण था तो जुम्मन शेख अपनी अमोल विद्यासे ही सबके आदर-पात्र बने थे।

२

जुम्मन शेखकी एक बूढी खाला (मौसी) थी। उसके पास कुछ थोड़ी सी मिलकियत थी। परन्तु उसके निकट सम्बन्धियोंमें कोई न था। जुम्मनने लम्बे-चौडे वादे करके वह मिलकियत अपने नाम चढवा ली थी। जबतक दान पत्रकी रजिस्टरी न हुई थी तबतक खाला जानका खूब आदर-सत्कार किया गया, उन्हें खूब स्वादिष्ट पदार्थ खिलाये गये। हलुवे पुलावकी वर्षा सी की गई, पर रजिस्टरीकी मुहरने इन खातिर दारियोंपर भी मानो मुहर लगा दी। जुम्मनकी पत्नी करीमन रोटियोंके साथ कड़वी बातोंमे कुछ तेज तीखे सालन भी देने लगी। जुम्मन शेख भी निष्ठुर हो गये। अब बेचारी खालाजानको प्रायः नित्य ही ऐसी बातें सुननी पड़ती थी।

बुढिया न जाने कबतक जियेगी। दो तीन बीघे ऊसर क्या दे दिया है मानो माल ले लिया है। बघारी दालके बिना रोटियाँ नहीं उतरतीं। जितना रुपया इसके पेटमें झोंक चुके उतनेमे तो अबतक एक गाँव मोल ले लेते।

कुछ दिन खालाजानने सुना और सहा, पर जब न सहा गया तब जुम्मनसे शिकायत की। जुम्मनने स्थानीय कर्मचारी—गृहस्वामिनीके प्रबन्धमें दखल देना उचित न समझा। कुछ दिनतक और योंही रो-धो कर काम चलता रहा। अन्तमें एक दिन खालाने जुम्मनसे कहा,

बेटा ! तुम्हारे साथ मेरा निर्वाह न होगा । तुम मुझे रुपये दे दिया करो, मैं अपना अलग पका खा लूंगी ।

जुम्मनने धृष्टताके साथ उत्तर दिया, रुपये क्या यहाँ फलते हैं ? खालाने नम्रतासे कहा, मुझे कुछ रूखा सूखा चाहिये भी कि नहीं ? जुम्मनने गम्भीर स्वरमें जवाब दिया, तो कोई यह थोड़े समझता है कि मौतसे लड़कर आई हो ?

खाला बिगड़ गईं । उन्होंने पचायत करनेकी धमकी दी । जुम्मन हँसे, जिस तरह कोई शिकारी हिरनको जालकी तरफ जाते देखकर मन ही मन हँसता है । वे बोले, हाँ जरूर पचायत करो । फैसला हो जाय । मुझे भी यह रात दिनकी खटपट पसन्द नहीं ।

पचायतमें किसकी जीत होगी, इस विषयमें जुम्मनको कुछ भी सदेह न था । आस-पासके गाँवोंमें ऐसा कौन था जो उनके अनुग्रहका ऋणी न हो ? ऐसा कौन था जो उनको शत्रु बनानेका साहस कर सके ? किसमें इतना बल था जो उनका सामना कर सके ? आसमानके फरिश्ते तो पंचायत करने आवेंगे ही नहीं ।

3

इसके बाद कई दिनतक बूढ़ी खाला हाथमें एक लकड़ी लिये आस-पासके गावोंमें दौड़ती रही । कमर झुककर कमान हो गई थी । एक एक पग चलना दूभर था । मगर बात आ पड़ी थी, उसका निर्णय कराना जरूरी था ।

बिरला ही कोई भला आदमी होगा जिसके सामने बुढ़ियाने दुःख के आँसू न बहाये हों । किसीने तो यों ही ऊपरी मनसे हूँ-हाँ करके टाल दिया । किसीने इस अन्यायपर जमानेको गालियाँ दीं और कहा, कब्रमें पाँव लटके हुए हैं, आज मरे कल दूसरा दिन हो, पर हवस नहीं मानती । अब तुम्हें क्या चाहिये ? रोटी खाओ और अल्लाका नाम लो । तुम्हें खेती बारीसे अब क्या काम ? कुछ ऐसे सज्जन भी थे

जिन्हें हास्यके रसास्वादनका अच्छा अवसर मिला। झुकी हुई कमर, पोपला मुँह, सनके-से बाल—जब इतनी सामग्रियाँ एकत्र हों तब हँसी क्यों न आये? ऐसे न्याय-प्रिय, दयालु, दीनवत्सल पुरुष बहुत कम थे जिन्होंने उस अबलाके दुखड़ेको गौरसे सुना हो और उसको सान्त्वना दी हो। चारों ओरसे घूम घामकर बेचारी अलगू चौधरीके पास आई। लाठी पटक दी और दम लेकर बोली, बेटा, तुम भी क्षणभरके लिये मेरी पञ्चायतमें चले आना।

अलगू—मुझे बुलाकर क्या करोगी? कई गाँवोंके आदमी तो आवेंगे ही!

खाला—अपनी विपद तो सबके आगे रो आई हूँ, आने न आनेका अख्तियार उनको है।

अलगू—यों आनेको मैं आ जाऊँगा, मगर पंचायतमें मुँह न खोलूँगा।

खाला—क्यों बेटा?

अलगू—अब इसका क्या जवाब दूँ? अपनी खुशी। जुम्मन मेरे पुराने मित्र हैं। उनसे बिगाड़ नहीं कर सकता।

खाला—बेटा! क्या बिगाड़के भयसे ईमानकी बात न कहोगे?

हमारे सोये हुए धर्म—ज्ञानकी सारी सम्पत्ति लुट जाय तो उसे खबर नहीं होती, परन्तु ललकार सुनकर वह सचेत हो जाता है। फिर उसे कोई नहीं जीत सकता। अलगू इस सवालका कोई जवाब न दे सके। पर उनके हृदयमें यह शब्द गूँज रहे थे।

"क्या बिगाड़के भयसे ईमानकी बात न कहोगे?"

४

सन्ध्या समय एक पेड़के नीचे पञ्चायत बैठी। शेख जुम्मनने पहलेसे फर्श बिछा रखा था। उन्होंने पान, इलायची, हुक्के, तम्बाकू आदिका प्रबन्ध भी किया था। हाँ, वे स्वयं अलबत्ता अलगू चौधरीके साथ

जरा दूर बैठे हुए थे। जब कोई पंचायतमें आ जाता था तब दबे हुए सलाममे उसका शुभागमन करते थे। जब सूर्य अस्त हो गया और चिड़ियोंकी कलरव युक्त पंचायत पेड़ोंपर बैठी तब वहाँ भी पंचायत आरम्भ हुई। फर्शकी एक-एक अंगुल जमीन भर गई, पर अधिकांश दर्शक ही थे। निमन्त्रित महाशयोंमेंसे केवल वही लोग पधारे थे जिन्हें जुम्मनने अपनी कुछ कसर निकालनी थी। एक कोनेमें आग सुलग रही थी। नाई ताबड़तोड़ चिलम भर रहा था। यह निर्णय करना असम्भव था कि सुलगते हुए उपलोंसे अधिक धुआं निकलता था या चिलमके दमोंसे। लड़के इधर-उधर दौड़ रहे थे। कोई आपसमें गाली गलौज करते और कोई रोते थे। चारों तरफ कोलाहल मच रहा था। गाँवके कुत्ते इस जमावको भोज समझकर झुण्डके झुण्ड इकट्ठे हो गये थे।

पंच लोग बैठ गये तो बूढ़ी खालाने उनसे विनती की।

'पंचो! आज तीन साल हुए मैंने अपनी सारी जायदाद अपने भानजेके नाम लिख दी थी। इसे आप लोग जानते ही होंगे। जुम्मनने मुझे हीन ह्यात रोटी कपड़ा देना कबूल किया था। सालभर तो मैंने इसके साथ रो धोकर काटे, पर अब रात दिनका रोना नहीं सहा जाता। मुझे न पेटभर रोटी मिलती है और न तनका कपड़ा। बेकस बेवा हूं। कचहरी दरबार कर नहीं सकती। तुम्हारे सिवाय और किसे अपना दुःख सुनाऊँ। तुम लोग जो राह निकाल दो उसी राहपर चलूं। अगर मुझमें कोई ऐब देखो, मेरे मुंहपर थप्पड़ मारो। जुम्मनमें बुराई देखो तो उसे समझाओ। क्यों एक बेकसकी आह लेता है? पंचका हुक्म सर माथेपर चढ़ाऊंगी।

रामधन मिश्र, जिनके कई असामियोंको जुम्मनने अपने गाँवमें बसा लिया था, बोले, जुम्मन मियां, किसे पंच बदते हो? अभीसे इसका निपटारा कर लो। फिर जो कुछ पंच कहेंगे वही मानना पड़ेगा।

जुम्मनको इस समय सदस्योंमें विशेषकर वही लोग दीखे पड़े जिनसे किसी न किसी कारण उनका वैमनस्य था। जुम्मन बोले—पंचका हुक्म अल्लाहका हुक्म है। खालाजान जिसे चाहें बदें, मुझे कोई उज्र नहीं।

खालाने चिल्लाकर कहा—अरे अल्लाहके बन्दे! पंचोंके नाम क्यों नहीं बता देता? कुछ मुझे भी तो मालूम हो।

जुम्मनने क्रोधसे कहा, अब इस वक्त मेरा मुंह न खुलवाओ। तुम्हारी बन पड़ी है, जिसे चाहो पंच बदो।

खालाजान जुम्मनके आक्षेपको समझ गई। वह बोली, बेटा! खुदा से डरो। पंच न किसीके दोस्त होते हैं न किसीके दुश्मन, कैसी बात कहते हो? और तुम्हारा किसीपर विश्वास न हो तो जाने दो, अलगू चौधरीको तो मानते हो? लो, मैं उन्हींको सरपंच बदती हूं।

जुम्मन शेख आनन्दसे फूल उठे, परन्तु भावोंको छिपाकर बोले, अलगू चौधरी ही सही। मेरे लिये जैसे रामधन मिश्र वैसे अलगू।

अलगू इस झमेलेमें फंसना नहीं चाहते थे। वे कन्नी काटने लगे। बोले, खाला! तुम जानती हो कि मेरी जुम्मनसे गाढ़ी दोस्ती है।

खालाने गम्भीर स्वरसे कहा—बेटा! दोस्तीके लिये कोई अपना ईमान नहीं बेचता। पंचके दिलमें खुदा बसता है। पंचोंके मुंहसे जो बात निकलती है वह खुदाकी तरफसे निकलती है। अलगू चौधरी सरपंच हुए। रामधन मिश्र और जुम्मनके दूसरे विरोधियोंने बुढ़ियाको मनमें बहुत कोसा।

अलगू चौधरी बोले, जुम्मन शेख, हम और तुम पुराने दोस्त हैं। जब काम पड़ा है, तुमने हमारी मदद की है और हम भी जो कुछ बन पड़ा, तुम्हारी सेवा करते रहे हैं। मगर इस समय तुम और बूढ़ी खाला दोनों हमारी निगाहमें बराबर हो। तुमको पंचोंसे जो कुछ अर्ज करना हो, करो।

जुम्मनको पूरा विश्वास था कि अब बाजी मेरी है। अलगू यह सब

दिखावेकी बातें कर रहा है, अतएव शान्त-चित्त होकर बोले—पंचो! तीन साल हुए खालाजानने अपनी जायदाद मेरे नाम हिब्बा कर दी थी। मैंने उन्हें हीनहयात खाना-कपड़ा देना कबूल किया था। खुदा गवाह है कि आजतक मैंने खालाजानको कोई तकलीफ नहीं दी। मैं उन्हें अपनी माके समान समझता हूँ, उनकी खिदमत करना मेरा फर्ज है, मगर औरतोंमें जरा अनबन रहती है। इसमें मेरा क्या वश है? खालाजान मुझसे माहवार खर्च अलग माँगती हैं। जायदाद जितनी है वह पंचोंसे छिपी नहीं है। उससे इतना मुनाफा नहीं होता कि मैं माहवार खर्च दे सकूँ। इसके अलावा हिब्बानामेमें माहवार खर्चका कोई जिक्र नहीं, नहीं तो मैं भूलकर भी इस झमेलेमें न पड़ता। बस मुझे यही कहना है। आइन्दा पंचोंको अख्तियार है जो फैसला चाहें करें।

अलगू चौधरीको हमेशा कचहरीमें काम पड़ता था, अतएव पूरा कानूनी आदमी था। उसने जुम्मनसे जिरह करनी आरम्भ की। एक एक प्रश्न जुम्मनके हृदयपर हथौड़ीकी चोटकी तरह पड़ता था। रामधन मिश्र इन प्रश्नोंपर मुग्ध हुए जाते थे। जुम्मन चकित था कि अलगूको क्या हो गया है? अभी यह मेरे साथ बैठा हुआ कैसी कैसी बातें कर रहा था। इतनी ही देरमें ऐसी कायापलट हो गई कि मेरी जड़ खोदनेपर तुला हुआ है। न मालूम कबकी कसर यह निकाल रहा है? क्या इतने दिनोंकी दोस्ती कुछ भी काम न आवेगी?

जुम्मन शेख इसी सङ्कल्प विकल्पमें पड़े हुए थे कि इतनेमें अलगूने फैसला सुनाया—

जुम्मन शेख! पंचोंने इस मामलेपर विचार किया। उन्हें यह नीति संगत मालूम होता है कि खालाजानको माहवार-खर्च दिया जाय। हमारा विचार है कि खालाकी जायदादसे इतना मुनाफा अवश्य होता है कि माहवार खर्च दिया जा सके। बस, यही हमारा फैसला है। अगर जुम्मनको खर्च देना मंजूर न हो, तो हिब्बानामा रद्द समझा जाय।

५

यह फैसला सुनते ही जुम्मन सन्नाटेमें आ गये। जो अपना मित्र हो वह शत्रुका सा व्यवहार करे और गलेपर छुरी फेरे? इसे समयके हेर फेरके सिवाय और क्या कहें? जिसपर पूरा भरोसा था, उसने समय पड़नेपर धोखा दिया। ऐसे ही अवसरोंपर झूठे-सच्चे मित्रोंकी परीक्षा हो जाती है। यही कलियुगकी दोस्ती है! अगर लोग ऐसे कपटी, धोखेबाज न होते तो देशमें आपत्तियोंका प्रकोप क्यों होता? यह हैजा, प्लेग आदि व्याधियाँ दुष्कर्मोंके ही दण्ड हैं।

मगर रामधन मिश्र और अन्य पंच अलगू चौधरीकी इस नीति परायणताकी प्रशंसा जी खोलकर कर रहे थे। वे कहते थे, इसीका नाम पंचायत है। दूधका दूध और पानीका पानी कर दिया। दोस्ती दोस्तीकी जगह है, किन्तु धर्मका पालन करना मुख्य है। ऐसे ही सत्यवादियोंके बल पृथ्वी ठहरी है, नहीं तो वह कबकी रसातलको चली जाती।

इस फैसलेने अलगू और जुम्मनकी दोस्तीकी जड़ हिला दी। अब वे साथ साथ बातें करते नहीं दिखाई देते। इतना पुराना मित्रतारूपी वृक्ष सत्यका एक हल्का झोंका भी न सह सका। सचमुच वह बालूकी ही जमीनपर खड़ा था।

उनमें अब शिष्टाचारका अधिक व्यवहार होने लगा। एक दूसरेकी आवभगत ज्यादा करने लगे। वे मिलते जुलते थे, मगर उसी तरह जैसे तलवारसे ढाल मिलती है।

जुम्मनके चित्तमें मित्रकी कुटिलता आठों पहर खटका करती थी। उन्हें हर घड़ी यह चिन्ता रहती थी कि किसी तरह बदला लेनेका अवसर मिले।

६

अच्छे कामोंकी सिद्धिमें बड़ी देर लगती है, पर बुरे कामोंकी

सिद्धिमें यह बात नहीं। जुम्मनको भी बदला लेनेका अवसर जल्दी मिल गया ? पिछले साल अलगू चौधरी बटेसरसे बैलोंकी एक बहुत अच्छी जोड़ी मोल लाये थे। बैल पछाँही जातिके सुन्दर, बड़ी-बड़ी सींगोंवाले थे। महीनोंतक आस-पासके गाँवोंके लोग इनके दर्शन करते रहे। दैवयोगसे जुम्मनकी पचायतके एक महीने बाद इस जोड़ीका एक बैल मर गया। जुम्मनने दोस्तोंसे कहा—यह दगाबाजीकी सजा है। इन्सान सब भले ही कर जाय, पर खुदा नेक बद सब देखता है। अलगूको सन्देह हुआ कि जुम्मनने बैलको विष दिला दिया है। चौधराइनने भी जुम्मनपर ही इस दुर्घटनाका दोषारोपण किया। उसने कहा, जुम्मनने कुछ कर करा दिया है। चौधराइन और करीमनमें इस विषयपर एक दिन खूब ही वाद विवाद हुआ। दोनों देवियोंने शब्द बाहुल्यकी नदी बहा दी। व्यंग्य, वक्रोक्ति अन्योक्ति और उपमा आदि अलकारोंमें बातें हुईं। जुम्मनने किसी तरह शांति स्थापित की। उसने अपनी पत्नीको डाँट डपटकर समझा दिया। वे उसे इस रणभूमिसे हटा भी ले गये। उधर अलगू चौधरीने समझाने बुझानेका काम अपने तर्कपूर्ण सोटेसे लिया।

अब अकेला बैल किस कामका ? उसका जोड़ा बहुत ढूंढा गया, पर न मिला। निदान यह सलाह ठहरी कि इसे बेच डालना चाहिये। गाँवमें एक समझू साहु थे, वे इक्का गाड़ी हाँकते थे। गाँवसे गुड़, घी लादकर वे मण्डी ले जाते, मण्डीसे तेल नमक भर लाते और गाँवमें बेचते। इस बैलपर उनका मन लहराया। उन्होंने सोचा, यह बैल हाथ लगे तो दिनभरमें बेखटके तीन खेप हों। आजकल तो एक ही खेपके लाले पड़े रहते हैं। बैल देखा, गाड़ीमें दौड़ाया, बाल भौरीकी पहचान कराई, मोल तोल किया और उसे लाकर द्वारपर बाँध ही दिया। एक हो महीनेमें दाम चुकानेका वादा ठहरा। चौधरीको भी गरज थी ही, घाटेकी परवाह न की।

समझू साहुने नया बैल पाया तो लगे रगेदते। वे दिनमें तीन-तीन, चार-चार खेपें करने लगे। न चारेकी फिक्र थी न पानीकी, बस, खेपोंसे काम था। मंडी ले गये, वहां कुछ सूखा भूसा सामने डाल दिया। बेचारा जानवर अभी दम भी न लेने पाया कि फिर जोत दिया। अलगू चौधरीके घर थे तो चैनकी बंशी बजती थी। छठे छमासे कभी बहलीमें जोते जाते, तब खूब उछलते-कूदते और कोसोंतक दौड़ते जाते थे। वहां बैलरामको रातिब, साफ पानी, दली हुई अरहरकी दाल और भूसेके साथ खली और यही नहीं, कभी-कभी घीका स्वाद भी चखनेको मिल जाता था। शाम-सवेरे एक आदमी खरहरे करता, पोंछता और सुहलाता था। कहाँ वह सुख चैन, कहाँ यह आठों पहरकी खपन। महीने भरमें ही वह पिस सा गया। इक्केका जुवा देखते ही उसका लोहू सूख जाता था। एक एक पग चलना दूभर था। हड्डियाँ निकल आई थीं, पर था वह पानीदार, मारकी सहन न थी।

एक दिन चौथे खेपमें साहुजीने दूना बोझ लादा। दिनभरका थका जानवर, पैर न उठते थे। उसपर साहुजी कोड़े फटकारने लगे। बस, फिर क्या था, बैल कलेजा तोड़कर चला। वह कुछ दूर दौड़ा और चाहा कि जरा दम ले लूँ पर साहुजीको जल्द घर पहुँचनेकी फिक्र थी। अतएव उन्होंने कई कोड़े बड़ी निर्दयतासे फटकारे। बैलने एक बार फिर जोर लगाया। पर अबकी बार शक्तिने जवाब दे दिया। वह धरतीपर गिर पड़ा और ऐसा गिरा कि फिर न उठा। साहुजीने बहुत पीटा, टांग पकड़कर खींचा, नथुनोंमें लकड़ी ठूंस दी। पर कहीं मृतक भी उठ सकता है? तब साहुजीको कुछ शंका हुई, उन्होंने बैलको गौरसे देखा, खोलकर अलग किया और सोचने लगे कि गाड़ी कैसे घर पहुँचे। वे बहुत चीखे चिल्लाये, पर देहातका रास्ता बच्चोंकी आँखोंकी तरह सांझ होते ही बन्द हो जाता है, कोई नजर न आया। आसपास कोई गांव भी न था। मारे क्रोधके उन्होंने मरे हुए बैलपर और दुर्रे

लगाये और कोसने लगे, अभागे ! तुझे मरना ही था तो घर पहुँचकर मरता । ससुरा बीच रास्तेमें ही मर रहा ! अब गाड़ी कौन खींचे ? इस तरह साहजी खूब जले भुने । कई बोरे गुड़ और कई पीपे घी बेचे थे दो ढाई सौ रुपये कमरमें बंधे थे, इसके सिवाय गाड़ीपर कई बोरे नमकके थे । अतएव छोडकर जा भी न सकते थे । लाचार बेचारे गाड़ीपर ही लेट गये । वहीं रतजगा करनेकी ठान ली । चिलम पी, गाया, फिर हुक्का पिया । इस तरह साहजी आधी राततक नींदको बहलाते रहे । अपनी जानमें तो वे जागते ही रहे पर पौ फटते ही जो नींद टूटी और कमरपर हाथ रक्खा तो थैली गायब । घबराकर इधर-उधर देखा तो कई कनस्तर तेल भी नदारद । अफसोसमें बेचारा सिर पीटने लगा और पछाड़ खाने लगा, प्रातःकाल रोते बिलखते घर पहुंचा । सहुआइनने जब यह बुरी सुनावनी सुनी तब पहले रोई, फिर अलगू चौधरीको गालियाँ देने लगी, निगोड़ेने ऐसा कुलच्छना बैल दिया कि जन्म भरकी कमाई लुट गई ।

इस घटनाको हुए कई वर्ष बीत गये । अलगू जब अपने बैलके दाम माँगते तब साहु और सहुआइन दोनों ही झल्लाये हुए कुत्तोंकी तरह चढ़ बैठते और अंड-बंड बकने लगते, वाह ! यहां तो सारे जन्मकी कमाई लुट गई, सत्यानाश हो गया, इन्हें दामोंकी पड़ी है । मुर्दा बैल दिया था, उसपर दाम माँगने चले हैं । आँखोंमें धूल झोंक दी । सत्यानासी बैल गले बाँध दिया, हमें निरा पोंगा ही समझ लिया । हम भी बनियेके बच्चे हैं, ऐसे बुद्धू कहीं और होंगे । पहले जाकर किसी गड्ढेमें मुँह धो आओ तब दाम लेना, जी न मानता हो तो हमारा बैल खोल ले जाओ, महीना भरके बदले दो महीना जोत लो । रुपया क्या लोगे ?

चौधरीके अशुभचिन्तकोंकी कमी न थी । ऐसे अवसरोंपर वे भी एकत्र हो जाते और साहजीके बर्रानेकी पुष्टि करते । इस तरह फटकारें सुनकर बेचारे चौधरी अपना सा मुँह लेकर लौट आते, परन्तु डेढ़ सौ रुपयेसे इस तरह हाथ धो लेना आसान न था । एक बार वे भी गरम

पड़े। साहुजी बिगड़कर लाठी ढूंढने घर चले गये। अब सहुआइनजीने मैदान लिया। प्रश्नोत्तर होते-होते हाथापाईकी नौबत आ पहुंची। सहुआइनने घरमें घुसकर किवाड़ बन्द कर लिये। शोरगुल सुनकर गांवके भलेमानुष जमा हो गये। उन्होंने दोनोंको समझाया। साहुजीको दिलासा देकर घरसे निकाला। वे परामर्श देने लगे कि इस तरह सिर फुड़ावलसे काम न चलेगा। पंचायत करा लो। जो कुछ तै हो जाय उसे स्वीकार कर लो। साहुजी राजी हो गये। अलगूने भी हामी भर ली।

७

पंचायतकी तैयारियाँ होने लगीं। दोनों पक्षोंने अपने अपने दल बनाने शुरू किये। इसके बाद तीसरे दिन उसी वृक्षके नीचे फिर पंचायत बैठी। वही संध्याका समय था। खेतोंमें कौवे पंचायत कर रहे थे। विवादग्रस्त विषय यह था कि मटरकी फलियोंपर उनका स्वत्व है या नहीं और जबतक यह प्रश्न हल न हो जाय तबतक वे रखवालेकी पुकारपर अपनी अप्रसन्नता प्रकट करना आवश्यक समझते थे। पेड़की डालियोंपर बैठी शुक मण्डलीमें यह प्रश्न छिड़ा हुआ था कि मनुष्यको उन्हें बेमुरौवत कहनेका क्या अधिकार है, जब उसे स्वयं अपने मित्रोंको भी दगा देनेमें संकोच नहीं होता।

पंचायत बैठ गई तो रामधन मिश्रने कहा—अब देरी क्यों? पंचोंका चुनाव हो जाना चाहिये। बोलो चौधरी, किस किसको पंच बदते हो?

अलगूने दीन भावसे कहा—समझू साहु ही चुन लें।

समझू खड़े हुए और कड़ककर बोले, मेरी ओरसे जुम्मन शेख।

जुम्मनका नाम सुनते ही अलगू चौधरीका कलेजा धक-धक करने लगा, मानो किसीने अचानक थप्पड़ मार दिया हो। रामधन अलगूके मित्र थे। वे बातको ताड़ गये। पूछा, क्यों चौधरी तुम्हें कोई उज्र तो नहीं?

चौधरीने निराश होकर कहा, नहीं मुझे क्या उज्र होगा ?

\+ + + +

अपने उत्तरदायित्वका ज्ञान बहुधा हमारे सकुचित व्यवहारोंका सुधार होता है। जब हम राह भूलकर भटकने लगते हैं तब यही ज्ञान हमारा विश्वसनीय पथ-दर्शक बन जाता है।

पत्र सम्पादक अपनी शान्ति कुटीरमें बैठा हुआ कितनी धृष्टता और स्वतन्त्रताके साथ अपनी प्रबल लेखनीसे मन्त्रिमण्डलपर आक्रमण करता है परन्तु ऐसे अवसर भी आते हैं जब वह स्वयं मन्त्रिमण्डलमें सम्मिलित होता है। मण्डलके भवनमें पग धरते ही उसकी लेखनी कितनी मर्मज्ञ, कितनी विचारशील, कितनी न्याय-परायण हो जाती है, इसका कारण उत्तरदायित्वका ज्ञान है। नवयुवक युवावस्थामें कितना उद्दण्ड रहता है। माता पिता उसकी ओरसे कितने चिन्तित रहते हैं। वे उसे कुल-कलङ्क समझते हैं, परन्तु थोड़े ही समयमें परिवारका बोझ सिरपर पड़ते ही वही अव्यवस्थित चित्त, उन्मत्त युवक कितना धैर्यशील, कैसा शान्त चित्त हो जाता है। यह भी उत्तरदायित्वके ज्ञानका ही फल है।

जुम्मन शेखके मनमें भी सरपचका उच्चस्थान ग्रहण करते ही अपनी जिम्मेदारीका भाव पैदा हुआ। उसने सोचा, मैं इस वक्त न्याय और धर्मके सर्वोच्च आसनपर बैठा हूँ। मेरे मुँहसे इस समय जो कुछ निकलेगा वह देववाणीके सदृश है—और देववाणीमें मेरे मनोविकारोंका कदापि समावेश न होना चाहिये। मुझे सत्यसे जौ भर टलना उचित नहीं।

पञ्चोंने दोनों पक्षोंसे सवाल जवाब करने शुरू किये। बहुत देरतक दोनों दल अपने अपने पक्षका समर्थन करते रहे। इस विषयमें तो सब सहमत थे कि समझूको बैलका मूल्य देना चाहिये परन्तु दो महाशय इस कारण रियायत करना चाहते थे कि बैलके मर जानेसे समझूको

हानि हुई। इसके प्रतिकूल दो सभ्य मूल्यके अतिरिक्त समझूको कुछ दण्ड भी देना चाहते थे, जिससे फिर किसीको पशुओंके साथ ऐसी निर्दयता करनेका साहस न हो। अन्तमें जुम्मनने फैसला सुनाया, अलगू चौधरी और समझू साहु! पंचोंने तुम्हारे मुआमलेपर अच्छी तरह विचार किया। समझूको उचित है कि बैलका पूरा दाम दें। जिस वक्त उन्होंने बैल लिया, उसे कोई बीमारी न थी। अगर उसी समय दाम दे दिया जाता तो आज समझू उसे फेर लेनेका आग्रह न करते। बैलकी मृत्यु केवल इस कारण हुई कि उससे बड़ा कठिन परिश्रम कराया गया और उसके दाने-चारेका कोई अच्छा प्रबन्ध नहीं किया गया।

रामधन मिश्र बोले समझूने बैलको जान-बूझकर मारा है। अतएव उनसे दण्ड लेना चाहिये!

जुम्मन बोले, यह दूसरा सवाल है। हमको इससे कोई मतलब नहीं।

झगड़ू साहुने कहा, समझूके साथ कुछ रियायत होनी चाहिये।

जुम्मन बोले, यह अलगू चौधरीकी इच्छापर है। वे रियायत करें तो उनकी भलमनसी है।

अलगू चौधरी फूले न समाये। उठ खड़े हुए और जोरसे बोले, पंच परमेश्वरकी जय!

चारों ओरसे प्रतिध्वनि हुई—पंच परमेश्वरकी जय!

प्रत्येक मनुष्य जुम्मनकी नीतिको सराहता था—इसे कहते हैं न्याय! यह मनुष्यका काम नहीं, पंचमें परमेश्वर वास करते हैं। यह उन्हींकी महिमा है। पंचके सामने खोटेको कौन खरा कह सकता है?

थोड़ी देर बाद जुम्मन अलगूके पास आये और उनसे गले लिपट-कर बोले, भैया जबसे तुमने मेरी पंचायत की, तबसे मैं तुम्हारा प्राण-घातक शत्रु बन गया था, पर आज मुझे ज्ञात हुआ कि पंचके पदपर बैठकर न कोई किसीका दोस्त होता है न दुश्मन। न्यायके सिवा उसे

और कुछ नहीं सूझता। आज मुझे विश्वास हो गया कि पंचकी जबानमें खुदा बोलता है।

अलगू रोने लगे। इस पानीसे दोनोंके दिलोंकी मैल धुल गई। मित्रताकी मुरझाई लता फिर हरी हो गई।



# नमकका दारोगा

१

जब नमकका नया विभाग बना और ईश्वरदत्त वस्तुके व्यवहार करनेका निषेध हो गया तो लोग चोरी छिपे इसका व्यापार करने लगे। अनेक प्रकारके छल प्रपचोंका सूत्र-पात हुआ, कोई घूससे काम निकालता था, कोई चालाकीसे। अधिकारियोंके पौवारह थे। पटवारीगिरीका सर्व-सम्मानित पद छोड़ छोड़कर लोग इस विभागकी बरकन्दाजी करते थे। इसके दारोगापदके लिये तो वकीलोंका भी जी ललचता था। यह वह समय था जब अगरेजी शिक्षा और ईसाई मतको लोग एक ही वस्तु समझते थे। फारसीका प्राबल्य था। प्रेमकी कथाएँ और शृंगाररसके काव्य पढकर फारसीदा लोग सर्वोच्च पदोंपर नियुक्त हो जाया करते थे। मुन्शी वशीधर भी जुलेखाकी विरह कथा समाप्त करके मजनू और फरहादके प्रेमवृत्तान्तको नल और नीलकी लड़ाई और अमेरिकाके आविष्कारसे अधिक महत्वकी बातें समझते हुए रोजगारकी खोजमें निकले। उनके पिता एक अनुभवी पुरुष थे। समझाने लगे, बेटा! घरकी दशा देख रहे हो। ऋणके बोझसे दबे हुए हैं। लड़कियाँ हैं, वह घास फूसकी तरह बढ़ती चली जाती हैं। मैं करारेपरका वृक्ष हो रहा हूं, न मालूम कब गिर पड़ूँ। अब तुम्हीं घरके मालिक मुख्तार हो। नौकरी में ओहदेकी ओर ध्यान मत देना, यह तो पीरका मजार है। निगाह चढ़ावे और चादरपर रखनी चाहिये। ऐसा काम ढूंढ़ना जहां कुछ ऊपरी आय हो। मासिक वेतन तो पूर्णमासीका चाँद है, जो एक दिन दिखाई देता है और फिर घटते घटते लुप्त हो जाता है। ऊपरी आय

बहता हुआ श्रोत है जिससे सदैव प्यास बुझती है। वेतन मनुष्य देता है इसीसे उसमें वृद्धि नहीं होती। ऊपरी आमदनी ईश्वर देता है, इसीसे उसकी बरकत होती है। तुम स्वयं विद्वान हो, तुम्हें क्या समझाऊँ। इस विषयमें विवेककी बड़ी आवश्यकता है। मनुष्यको देखो, उसकी आवश्यकताको देखो और अवसर देखो, उसके उपरांत जो उचित समझो, करो। गरजवाले आदमीके साथ कठोरता करनेमें लाभ ही लाभ है। लेकिन बेगरजको दावपर पाना जरा कठिन है। इन बातोंको निगाहमें बाँध लो यह मेरी जन्मभरकी कमाई है।

इस उपदेशके बाद पिताजीने आशीर्वाद दिया। वंशीधर आज्ञाकारी पुत्र थे। ये बातें ध्यानसे सुनीं और तब घरसे चल खड़े हुए। इस विस्तृत संसारमें उनके लिये धैर्य अपना मित्र, बुद्धि अपनी पथ-दर्शक और आत्मावलम्बन ही अपना सहायक था। लेकिन अच्छे शकुनसे चले थे, जाते ही जाते नमक विभागके दारोगा-पदपर प्रतिष्ठित हो गये। वेतन अच्छा और ऊपरी आयका तो कुछ ठिकाना ही न था। वृद्ध मुंशीजीको यह सुख संवाद मिला तो फूले न समाये। महाजन लोग कुछ नरम पड़े, कलवारकी आशालता लहलहाई। पड़ोसियोंके हृदयमें शूल उठने लगी।

## २

जाड़ेके दिन थे और रातका समय। नमकके सिपाही, चौकीदार नशेमें मस्त थे। मुंशी वंशीधरको यहां आये अभी छः महीनोंसे अधिक न हुए थे, लेकिन इस थोड़े समयमें ही उन्होंने अपनी कार्य कुशलता और उत्तम आचारसे अफसरोंको मोहित कर लिया। अफसर लोग उनपर बहुत विश्वास करने लगे। नमकके दफ्तरसे एक मील पूर्वकी ओर जमुना बहती थी, उसपर नावोंका एक पुल बना हुआ था। दारोगाजी किवाड़ बन्द किये मीठी नींद सोते थे। अचानक आँख खुली तो नदीके प्रवाहकी जगह गाड़ियोंकी गड़गड़ाहट तथा मल्लाहोंका

कोलाहल सुनाई दिया। उठ बैठे। इतनी रात गये गाड़ियाँ क्यों नदीके पार जाती हैं? अवश्य कुछ-न-कुछ गोलमाल है। तर्कने भ्रमको पुष्ट किया। वरद. पहनी, तमञ्चा जेबमें रखा और बात-की-बातमें घोड़ा बढ़ाये हुए पुलपर आ पहुँचे। गाड़ियोंकी एक लम्बी कतार पुलके पार जाते देखी। डाँटकर पूछा, किसकी गाड़िया हैं?

थोड़ी देरतक सन्नाटा रहा। आदमियोंमें कुछ कानाफूसी हुई, तब आगेवालेने कहा—पण्डित अलोपीदीनकी।

"कौन पण्डित अलोपीदीन?"

"दातागञ्जके"

मुंशी वंशीधर चौंके! पण्डित अलोपीदीन इस इलाकेके सबसे प्रतिष्ठित जमींदार थे। लाखों रुपयेका लेन देन करते थे, इधर छोटेसे बड़े कौन ऐसे थे जो उनके ऋणी न हों। व्यापार भी लम्बा-चौड़ा था। बड़े चलते पुरजे आदमी थे। अङ्गरेज अफसर उनके इलाकेमें शिकार खेलने आते और उनके मेहमान होते। बारहों मास सदाव्रत चलता था।

मुन्शीजीने पूछा, गाड़ियाँ कहाँ जायगी? उत्तर मिला, कानपुर। लेकिन इस प्रश्नपर कि इनमें है क्या, फिर सन्नाटा छा गया। दारोगा साहबका सन्देह और भी बढ़ा। कुछ देरतक उत्तरकी बाट देखकर वह जोरसे बोले, क्या तुम सब गूंगे हो गये हो? हम पूछते हैं, इनमें क्या लदा है?

जब इस बार भी कोई उत्तर नहीं मिला तो उन्होंने घोड़ेको एक गाड़ीसे मिलाकर बोरेको टटोला। भ्रम दूर हो गया। यह नमकके ढेले थे।

२

पण्डित अलोपीदीन अपने सजीले रथपर सवार, कुछ सोते कुछ जागते चले आते थे। अचानक कई गाड़ीवानोंने घबराये हुए आकर जगाया और बोले—महाराज, दारोगाने गाड़ियाँ रोक दी हैं और घाट पर खड़े आपको बुलाते हैं।

पण्डित अलोपीदीनका लक्ष्मीजीपर अखण्ड विश्वास था। वह कहा करते थे कि ससारका तो कहना ही क्या स्वर्गमें भी लक्ष्मीका ही राज्य है। उनका यह कहना यथार्थ ही था। न्याय और नीति सब लक्ष्मीके ही खिलौने हैं, इन्हें वह जैसे चाहती नचाती है। लेटे ही लेटे गर्वसे बोले, चलो हम आते हैं। यह कहकर पण्डितजीने बड़ी निश्चिन्ततासे पानके बीडे लगाकर खाये। फिर लिहाफ ओढे हुए दारोगाके पास आकर बोले, बाबूजी आशीर्वाद! कहिये, हमसे ऐसा कौनसा अपराध हुआ कि गाडियाँ रोक दी गयीं? हम ब्राह्मणोंपर तो आपकी कृपादृष्टि रहनी चाहिये।

वशीधर रुखाईसे बोले, सरकारी हुक्म।

प० अलोपीदीनने हँसकर कहा, हम सरकारी हुक्मको नहीं जानते और न सरकारको। हमारे सरकार तो आप ही हैं। हमारा और आप का तो घरका मामला है, हम कभी आपसे बाहर हो सकते हैं। आपने व्यर्थका कष्ट उठाया। यह हो नहीं सकता कि इधरसे जाय और इस घाटके देवताको भेंट न चढावें। मै तो आपकी सेवामें स्वय ही आ रहा था। वशीधरपर ऐश्वर्यकी मोहिनी वशीका कुछ प्रभाव न पडा। ईमानदारीकी नई उमग थी। कडककर बोले, हम उन नमकहरामोंमें नहीं हैं जो कौडियोंपर अपना ईमान बेचते फिरते हैं। आप इस समय हिरासतमें हैं। सवेरे आपका कायदेके अनुसार चालान होगा। बस, मुझे अधिक बातोंकी फुर्सत नहीं है। जमादार बदलूसिह, तुम इन्हे हिरासत में ले चलो, मै हुक्म देता हूँ।

प० अलोपीदीन स्तम्भित हो गये। गाडीवानोंमें हलचल मच गयी। पण्डितजीके जीवनमें कदाचित् यह पहला ही अवसर था कि पण्डितजीको ऐसी कठोर बातें सुननी पड़ीं। बदलू सिह आगे बढा, किन्तु रोबके मारे यह साहस न हुआ कि उनका हाथ पकड सके। पण्डितजी ने धर्मको धनका ऐसा निरादर करते कभी न देखा था। विचार किया

कि यह अभी उद्दण्ड लड़का है। माया मोहके जालमें नहीं पड़ा। अल्हड़ है, झिझकता है। बहुत दीनभावसे बोले, बाबू साहब! ऐसा न कीजिये, हम मिट जायँगे। इज्जत धूलमें मिल जायगी। हमारा अपमान करनेसे आपके क्या हाथ आयेगा। हम किसी तरह आपसे बाहर थोड़े ही हैं ?

वंशीधरने कठोर स्वरमें कहा, हम ऐसी बातें नहीं सुनना चाहते।

अलोपीदीनने जिस सहारेको चट्टान समझ रखा था, वह पैरोंके नीचेसे खिसकता हुआ मालूम हुआ। स्वाभिमान और धन ऐश्वर्यको कड़ी चोट लगी। किन्तु अभीतक धनकी सांख्यिक शक्तिका पूरा भरोसा था। अपने मुख्तारसे बोले, लालाजी, एक हजारके नोट बाबू साहबकी भेंट करो, आप इस समय भूखे सिंह हो रहे हैं।

वंशीधरने गरम होकर कहा, एक हजार नहीं, एक लाख भी मुझे सच्चे मार्गसे नहीं हटा सकते।

धर्मकी इस बुद्धिहीन दृढ़ता और देव दुर्लभ त्यागपर धन बहुत झुंझलाया। अब दोनों शक्तियोंमें संग्राम होने लगा। धनने उछल-उछलकर आक्रमण करने शुरू किये। एकसे पांच, पाँचसे दस, दससे पन्द्रह और पन्द्रहसे बीस हजारतक नौबत पहुँची, किन्तु धर्म अलौकिक वीरताके साथ इस बहुसंख्यक सेनाके सम्मुख अकेला पर्वतकी भांति अटल, अविचलित खड़ा था।

अलोपीदीन निराश होकर बोले, अब इससे अधिक मेरा साहस नहीं। आगे आपको अधिकार है।

वंशीधरने अपने जमादारको ललकारा। बदलूसिंह मनमें दारोगाजीको गालियाँ देता हुआ पण्डित अलोपीदीनकी ओर बढ़ा। पण्डितजी घबराकर दो तीन कदम पीछे हट गये। अत्यन्त दीनतासे बोले, बाबू, साहब ईश्वरके लिये मुझपर दया कीजिये, मैं पच्चीस हजारपर निपटारा करनेको तैयार हूँ।

"असम्भव बात है।"

'तीस हजारपर ?'

"किसी तरह भी सम्भव नहीं !"

"क्या चालीस हजारपर भी नहीं ?

"चालीस हजार नहीं, चालीस लाखपर भी असम्भव है।

बदलूसिंह, इस आदमीको अभी हिरासतमें ले लो। अब मैं एक शब्द भी नहीं सुनना चाहता।"

धर्मने धनको पैरोंतले कुचल डाला। अलोपीदीनने एक हृष्ट पुष्ट मनुष्यको हथकड़ियाँ लिये हुए अपनी तरफ आते देखा। चारों ओर निराश और कातर दृष्टिसे देखने लगे। इसके बाद यकायक मूर्छित होकर गिर पड़े।

४

दुनिया सोती थी, पर दुनियाकी जीभ जागती थी। सवेरे ही देखिये तो बालक वृद्ध सबके मुंहसे यही बात सुनाई देती थी। जिसे देखिये वही पण्डितजीके इस व्यवहारपर टीका टिप्पणी कर रहा था, निन्दाकी बौछारें हो रही थीं, मानो संसारसे अब पापका पाप कट गया। पानीको दूधके नामसे बेचनेवाला ग्वाला, कल्पित रोजनामचे भरनेवाले अधिकारीवर्ग, रेलमें बिना टिकट सफर करनेवाले बाबू लोग, जाली दस्तावेज बनानेवाले सेठ और साहूकार, यह सब-के-सब देवताओंकी भांति गर्दनें चला रहे थे। जब दूसरे दिन पण्डित अलोपीदीन अभियुक्त होकर कान्स्टेबलोंके साथ, हाथोंमें हथकड़ियाँ, हृदयमें ग्लानि और क्षोभ भरे लज्जासे गर्दन झुकाये अदालतकी तरफ चले तो सारे शहरमें हलचल मच गई। मेलोंमें कदाचित आंखें इतनी व्यग्र न होती होंगी। भीड़के मारे छत और दीवारमें कोई भेद न रहा।

किन्तु अदालतमें पहुँचनेकी देर थी। पण्डित अलोपीदीन इस अगाध वनके सिंह थे। अधिकारीवर्ग उनके भक्त, अमले उनके सेवक,

वकील मुख्तार उनके आज्ञापालक और अरदली, चपरासी तथा चौकी दार तो उनके बिना मोलके गुलाम थे। उन्हें देखते ही लोग चारों तरफ से दौड़े। सभी लोग विस्मित हो रहे थे। इसलिये नहीं कि अलोपीदीनने क्यों यह कर्म किया, बल्कि इसलिये कि वह कानूनके पंजेमें कैसे आये? ऐसा मनुष्य जिसके पास असाध्यसाधन करनेवाला धन और अनन्य वाचालता हो वह क्यों कानूनके पंजेमें आवे। प्रत्येक मनुष्य उनसे सहानुभूति प्रकट करता था। बड़ी तत्परतासे इस आक्रमणको रोकनेके निमित्त वकीलोंकी एक सेना तैयार की गई। न्यायके मैदानमें धर्म और धनमें युद्ध ठन गया। वंशीधर चुपचाप खड़े थे। उनके पास सत्यके सिवा न कोई बल था, न स्पष्ट भाषणके अतिरिक्त कोई शस्त्र। गवाह थे, किन्तु लोभसे डांवाडोल।

यहाँतक कि मुन्शीजीको न्याय भी अपनी ओरसे कुछ खिंचा हुआ देख पड़ता था। वह न्यायका दरबार था, परन्तु उसके कर्मचारियोंपर पक्षपातका नशा छाया हुआ था। किन्तु पक्षपात और न्यायका क्या मेल? जहाँ पक्षपात हो वहाँ न्यायकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। मुकद्दमा शीघ्र ही समाप्त हो गया। डिप्टी मैजिस्ट्रेटने अपनी तजवीजमें लिखा, पण्डित अलोपीदीनके विरुद्ध दिये गये प्रमाण निर्मूल और भ्रमात्मक हैं। वह एक बड़े भारी आदमी हैं, यह बात कल्पनासे बाहर है कि उन्होंने थोड़े लाभके लिये ऐसा दुस्साहस किया हो। यद्यपि नमकके दारोगा मुन्शी वंशीधरका अधिक दोष नहीं है, लेकिन यह बड़े खेदकी बात है कि उसकी उद्दण्डता और अविचारके कारण एक भलेमानुसको कष्ट झेलना पड़ा। हम प्रसन्न हैं कि वह अपने काममें सजग और सचेत रहता है, किन्तु नमकके मुकदमेकी बढ़ी हुई नमकहलालीने उसके विवेक और बुद्धिको भ्रष्ट कर दिया। भविष्यमें उसे होशियार रहना चाहिये।

वकीलोंने यह फैसला सुना और उछल पड़े। पण्डित अलोपीदीन

मुसकुराते हुए बाहर निकले। स्वजन बान्धवोंने रुपयोंकी लूट की। उदारताका सागर उमड़ पड़ा। उसकी लहरोंने अदालतकी नींवतक हिला दी। जब वंशीधर बाहर निकले तो चारों ओरसे उनके ऊपर व्यंग्यबाणोंकी वर्षा होने लगी। चपरासियोंने झुक झुककर सलाम किये। किन्तु इस समय एक एक कटुवाक्य, एक-एक संकेत उनकी गर्वाग्निको प्रज्ज्वलित कर रहा था। कदाचित् इस मुकदमेमें सफल होकर वह इस तरह अकड़ते हुए न चलते। आज उन्हें संसारका एक खेदजनक विचित्र अनुभव हुआ। न्याय और विद्वत्ता, लम्बी चौड़ी उपाधियां, बड़ी बड़ी दाढ़ियाँ और ढीले चोगे एक भी सच्चे आदरके पात्र नहीं हैं।

वंशीधरने धनसे बैर मोल लिया था, उसका मूल्य चुकाना अनिवार्य था। कठिनतासे एक सप्ताह बीता होगा कि मुअत्तलीका परवाना आ पहुँचा। कार्य्यपरायणताका दण्ड मिला। बेचारे भग्न हृदय, शोक और खेदसे व्यथित घरको चले। बूढे मुंशीजी तो पहले हीसे कुड़बुड़ा रहे थे कि चलते चलते इस लड़केको समझाया था, लेकिन एक न सुनी। सब मनमानी करता है। हम तो कलार और कसाईके तगादे सहें बुढ़ापेमें भगत बनकर बैठें और वहां बस सूखी तनख्वाह। हमने भी तो नौकरी की है और कोई ओहदेदार नहीं थे, लेकिन जो काम किया, दिल खोलकर किया और आप ईमानदार बनने चले हैं। घरमें चाहे अन्धेरा, मस्जिदमें अवश्य दिया जलायेंगे। खेद ऐसी समझ पर! पढ़ना लिखना सब अकारथ गया। इसके थोड़े ही दिनों बाद जब वंशीधर इस दुरवस्थामें घर पहुँचे और बूढ़े पिताजीने यह समाचार सुना तो सिर पीट लिया। बोले, जी चाहता है कि तुम्हारा और अपना सिर फोड़ लूं। बहुत देरतक पछता-पछताकर हाथ मलते रहे। क्रोधमें कुछ कठोर बातें भी कहीं और यदि वंशीधर वहांसे टल न जाते तो अवश्य ही यह क्रोध विकटरूप धारण करता। वृद्धा माताको

भी दुःख हुआ। जगन्नाथ और रामेश्वर यात्राकी कामनाएँ मिट्टीमें मिल गईं। पत्नीने तो कई दिनतक सीधे मुँहसे बात भी नहीं की।

इसी प्रकार एक सप्ताह बीत गया। सन्ध्याका समय था। बूढ़े मुंशीजी बैठे राम-नामकी माला जप रहे थे। इसी समय उनके द्वारपर एक सजा हुआ रथ आकर रुका। हरे और गुलाबी परदे, पछहिये बैलोंकी जोड़ी, उनकी गर्दनोंमें नीले धागे सींगे पीतलसे मढ़ी हुईं। कई नौकर लाठियाँ कन्धोंपर रखे साथ थे। मुंशीजी अगुवानीको दौड़े। देखा तो पण्डित अलोपीदीन हैं। झुककर दण्डवत की और लल्लो-चप्पोकी बातें करने लगे, हमारा भाग्य उदय हुआ, जो आपके चरण इस द्वारपर आये। आप हमारे पूज्य देवता हैं, आपको कौन सा मुँह दिखावें, मुँहमें तो कालिख लगी हुई है। किन्तु क्या करें, लड़का अभागा कपूत है, नहीं तो आपसे क्यों मुँह छिपाना पड़ता? ईश्वर निस्सन्तान चाहे रक्खे, पर ऐसी सन्तान न दे।

अलोपीदीनने कहा, नहीं भाई साहब, ऐसा न कहिए।

मुंशीजीने चकित होकर कहा, ऐसी सन्तानको और क्या कहूँ?

अलोपीदीनने वात्सल्यपूर्ण स्वरमें कहा, कुलतिलक और पुरुषोंकी कीर्त्ति उज्ज्वल करनेवाले संसारमें ऐने कितने धर्मपरायण मनुष्य हैं जो धर्मपर अपना सब कुछ अर्पण कर सकें?

प० अलोपीदीनने वंशीधरसे कहा, दारोगाजी, इसे खुशामद न समझिये, खुशामद करनेके लिये मुझे इतना कष्ट उठानेकी जरूरत न थी। उस रातको आपने अपने अधिकार-बलसे मुझे अपनी हिरासतमें लिया था, किन्तु आज मैं स्वेच्छासे आपकी हिरासतमें आया हूँ। मैंने हजारों रईस और अमीर देखे, हजारों उच्च पदाधिकारियोंसे काम पड़ा, किन्तु मुझे परास्त किया तो आपने। मैंने सबको अपना और अपने धनका गुलाम बनाकर छोड़ दिया। मुझे आज्ञा दीजिये कि आपसे कुछ विनय करूँ।

वंशीधरने अलोपीदीनको आते देखा तो उठकर सत्कार किया किन्तु स्वाभिमान सहित। समझ गये कि यह महाशय मुझे लज्जित करने और जलाने आये हैं। क्षमा प्रार्थनाकी चेष्टा नहीं की, वरन् उन्हें अपने पिताकी यह ठकुरसुहातीकी बात असह्य सी प्रतीत हुई। पर पण्डितजीकी बातें सुनी तो मनकी मैल मिट गयी। पण्डितजीकी ओर उडती हुई दृष्टिसे देखा। सद्भाव झलक रहा था। गर्वने अब लज्जाके सामने सिर झुका दिया। शर्माते हुए बोले, यह आपकी उदारता है जो ऐसा कहते हैं। मुझसे जो कुछ अविनय हुई है, उसे क्षमा कीजिये। मैं धर्म की बेडीमें जकडा हुआ था। नहीं तो वैसे मैं आपका दास हूं। जो आज्ञा होगी, वह मेरे सिर माथेपर।

अलोपीदीनने विनीत भावसे कहा, नदी तटपर आपने मेरी प्रार्थना नहीं स्वीकार की थी, किन्तु आज स्वीकार करनी पडेगी।

वंशीधर बोले, मैं किस योग्य हूं, किन्तु जो कुछ सेवा मुझसे हो सकती है उसमें त्रुटि न होगी।

अलोपीदीनने एक स्टाम्प लगा हुआ पत्र निकाला और उसे वंशीधरके सामने रखकर बोले, इस पदको स्वीकार कीजिये और अपने हस्ताक्षर कर दीजिये। मैं ब्राह्मण हूं, जबतक यह सवाल पूरा न कीजियेगा, द्वारसे न हटूंगा।

मुंशी वंशीधरने उस कागजको पढा तो कृतज्ञतासे आंखोंमें आंसू भर आये। पण्डित अलोपीदीनने उन्हें अपनी सारी जायदादका स्थायी मैनेजर नियत किया था। ७ हजार वार्षिक वेतनके अतिरिक्त रोजाना खर्च अलग, सवारीके लिये घोडे, रहनेको बंगला, नौकर चाकर मुफ्त। कम्पित स्वरसे बोले, पण्डितजी, मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि आपकी इस उदारताकी प्रशंसा कर सकूं। किन्तु मैं ऐसे उच्चपदके योग्य नहीं हूं।

अलोपीदीन हंसकर बोले, मुझे इस समय एक अयोग्य मनुष्यकी ही जरूरत है।

वंशीधरने गम्भीर भावसे कहा, यों मैं आपका दास हूं। आप जैसे कीर्तिवान, सज्जन पुरुषकी सेवा करना मेरे लिये सौभाग्यकी बात है। किन्तु मुझमें न विद्या है, न बुद्धि, न वह अनुभव जो इन त्रुटियोंकी पूर्ति कर देता है। ऐसे महान् कार्यके लिये एक बड़े मर्मज्ञ अनुभवी मनुष्यकी जरूरत है।

अलोपीदीनने कलमदानसे कलम निकाली और उसे वंशीधरके हाथमें देकर बोले, न मुझे विद्वत्ताकी चाह है, न अनुभवकी, न मर्मज्ञताकी, न कार्यकुशलताकी। इन गुणोंके महत्वका परिचय खूब पा चुका हूं। अब सौभाग्य और सुअवसरने मुझे वह मोती दे दिया है जिसके सामने योग्यता और विद्वत्ताकी चमक फीकी पड़ जाती है। यह कलम लीजिये, अधिक सोच विचार न कीजिये, दस्तखत कर दीजिये। परमात्मासे यही प्रार्थना है कि वह आपको सदैव वही नदीके किनारेवाला बेमुरौवत उद्दण्ड, कठोर, परन्तु धर्मनिष्ठ दारोगा बनाये रखे।

वंशीधरकी आंखें डबडबा आईं। हृदयके संकुचित पात्रमें इतना एहसान न समा सका। एक बार पण्डितजीकी ओर भक्ति और श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा और कांपते हुए हाथसे मैनेजरीके कागजपर हस्ताक्षर कर दिये।

अलोपीदीनने प्रफुल्लित होकर उन्हें गले लगा लिया।



# उपदेश

प्रयागके सुशिक्षित समाजमें पण्डित देवरत्न शर्मा वास्तवमें एक रत्न थे। शिक्षा भी उन्होंने उच्च श्रेणीकी पाई थी और कुलके भी उच्च थे। न्यायशीला गवर्नमेण्टने उन्हें एक उच्च पदपर नियुक्त करना चाहा, पर उन्होंने अपनी स्वतन्त्रताका घात करना उचित न समझा। उनके कई शुभचिन्तक मित्रोंने बहुत समझाया कि इस सुअवसरको हाथसे मत जाने दो, सरकारी नौकरी बड़े भाग्यसे मिलती है, बड़े बड़े लोग इसके लिये तरसते हैं और कामना लिये ही संसारसे प्रस्थान कर जाते हैं। अपने कुलकी कीर्ति उज्ज्वल करनेका इससे सुगम और मार्ग नहीं है, इसे कल्पवृक्ष समझो। विभव, सम्पत्ति, सम्मान और ख्याति यह सब इसके दास हैं। रह गई देश सेवा, सो तुम्हीं देशके लिये क्यों प्राण देते हो। इस नगरमें अनेक बड़े बड़े विद्वान् और धनवान पुरुष हैं, जो सुख चैनसे बंगलेमें रहते और मोटरोंपर हरहराते, धूलकी आंधी उड़ाते घूमते हैं। क्या वे लोग देश सेवक नहीं हैं। जब आवश्यकता होती है या कोई अवसर आता है तो वे देश सेवामें निमग्न हो जाते हैं। अभी जब म्युनिसिपल चुनावका झगड़ा छिड़ा तो "मेयोहाल"के हातेमें मोटरोंका ताता लगा हुआ था। भवनके भीतर राष्ट्रीय गीतों और व्याख्यानोंकी भरमार थी। पर इनमेंसे कौन ऐसा है, जिसने स्वार्थको तिलाञ्जलि दे रखी हो? संसारका नियम ही है कि पहले घरमें दीया जलाकर तब मस्जिदमें जलाया जाता है। सच्ची बात तो यह है कि यह जातीयताकी चर्चा कुछ कालिजके विद्यार्थियोंको ही शोभा देती है। जब संसारमें प्रवेश

हुआ तो कहाँकी जाति और कहाँकी जातीय चर्चा । संसारकी यही रीति है । फिर तुम्हींको कौमका काजी बननेकी क्या जरूरत ? यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय तो सरकारी पद पाकर मनुष्य अपने देश भाइयोंकी जैसी सच्ची सेवा कर सकता है वैसी किसी अन्य अवस्थामें कदापि नहीं कर सकता । एक दयालु दारोगा सैकड़ों जातीय सेवकोंसे अच्छा है । एक न्यायशील, धर्मपरायण मजिस्ट्रेट सहस्रों जातीय दानवीरोंसे अधिक देशसेवा कर सकता है । इसके लिये केवल हृदयमें लगन चाहिये । मनुष्य चाहे जिस अवस्थामें हो देशका हित साधन कर सकता है । इसलिये अब अधिक आगा-पीछा न करो, चटपट इस पदको स्वीकार कर लो ।

शर्माजीको और युक्तिया कुछ न जँची पर अन्तिम युक्तिकी सार-गर्भितासे वह इनकार न कर सके । लेकिन फिर भी चाहे नियमपरायणता-के कारण, चाहे केवल आलस्यके वश, जो बहुधा ऐसी दशाओंमें जातीय सेवाका गौरव पा जाता है, उन्होंने नौकरीसे अलग रहनेमें ही अपना कल्याण समझा । उनके इस स्वार्थ-त्यागपर कालेजके नवयुवकोंने उन्हें खूब बधाइयां दीं । इस आत्म विजयपर एक जातीय ड्रामा खेला गया, जिसके नायक हमारे शर्माजी ही थे । समाजकी उच्च श्रेणियोंमें इस आत्म त्यागकी चर्चा हुई और शर्माजीको अच्छी खासी ख्याति प्राप्त हो गयी। इसीसे वह कई वर्षोंसे जातीय सेवामें लीन रहते थे । इस सेवाका अधिक भाग समाचार पत्रोंके अवलोकनमें खर्च होता था, जो जातीय सेवाका ही एक विशेष अङ्ग समझा जाता है । इसके अतिरिक्त वह पत्रोंके लिये लेख लिखते, सभाएं करते और उनमें फड़कते हुए व्याख्यान देते थे । शर्माजी "फ्री लाइब्रेरी" के सेक्रेटरी, "स्टुडेण्ट्स एसोसियेशन" के सभापति, सोसल सर्विस लीग" के सहायक मन्त्री और प्राइमरी एजूकेशन कमिटीके संस्थापक थे । कृषि सम्बन्धी विषयोंसे उन्हें विशेष प्रेम था । पत्रोंमें जहां कहीं किसी नई खाद या किसी नवीन आविष्कार-

का वर्णन देखते, तत्काल उसपर लाल पेंसिलसे निशान कर देते और अपने लेखोंमें उसकी चर्चा करते थे। किंतु शहरसे थोड़ी दूरपर उनका एक बड़ा ग्राम होनेपर भी, वह अपने किसी असामीसे परिचित न थे। यहांतक कि कभी प्रयागके सरकारी कृषिक्षेत्रकी भी सैर करने न गये थे।

२

उसी महल्लेमें एक लाला बाबूलाल रहते थे। वह एक वकीलके मुहर्रिर थे। थोड़ी सी उर्दू हिंदी जानते थे और उसीसे अपना काम भली-भांति चला लेते थे। सरत शक्लके कुछ सुन्दर न थे। उस शक्लपर मऊके चारखानेकी लम्बी अचकन और भी शोभा देती थी। जूता भी देशी ही पहनते थे। यद्यपि कभी कभी वे कड़ुवे तेलसे उसकी सेवा किया करते, पर वह नीच स्वभावके अनुसार उन्हे काटनेसे न चूकता था। बेचारेको सालके ६ महीने पैरोंमें मलहम लगानी पड़ती। बहुधा नंगे पांव कचहरी जाते, पर कंजूस कहलानेके भयसे जूतोंको हाथमें ले जाते। जिस ग्राममें शर्माजीकी जमींदारी थी, उसमें कुछ थोड़ा सा हिस्सा उनका भी था। इस नातेसे कभी कभी उनके पास आया करते थे। हां. तातीलके दिनोंमें गांव चले जाते। शर्माजीको उनका आकर बैठना नागवार मालूम देता, विशेषकर जब वह फैशनेबुल मनुष्योंकी उपस्थिति में आ जाते। मुंशीजी भी कुछ ऐसी स्थूल दृष्टिके पुरुष थे कि उन्हें अपना अनमिलापन बिल्कुल दिखाई न देता। सबसे बड़ी आपत्ति यह थी कि वे बराबर कुर्सीपर डट जाते, मानो हंसोंमें कौआ। उस समय मित्रगण अङ्गरेजीमें बातें करने लगते और बाबूलालको क्षुद्रबुद्धि, झक्की, बौड़म, बुद्धू आदि उपाधियोंका पात्र बनाते। कभी कभी उनकी हँसी उड़ाते थे। शर्माजीमें इतनी सज्जनता अवश्य थी कि वे अपने विद्याहीन मित्रको यथाशक्ति निरादरसे बचाते थे। यथार्थमें बाबूलालकी शर्माजीपर सच्ची भक्ति थी। एक तो वह बी० ए० पास थे, जिसका अर्थ यह दाना

है कि वह सरस्वती देवीके वरपुत्र थे, दूसरे वह देश भक्त थे। बाबूलाल जैसे विद्याविहीन मनुष्यका ऐसे रत्नको आदरणीय समझना कुछ अस्वाभाविक न था।

३

एक बार प्रयागमें प्लेगका प्रकोप हुआ। शहरके रईस लोग निकल भागे। बेचारे गरीब चूहोंकी भाँति मरने लगे। शर्माजीने भी चलनेकी ठानी। लेकिन "सोसल सर्विस लीग" के वे मन्त्री ठहरे। ऐसे अवसरपर निकल भागनेमें बदनामीका भय था। बहाना ढूँढ़ा। "लीग" के प्रायः सभी लोग कालेजमें पढ़ते थे। उन्हें बुलाकर इन शब्दोंमें अपना अभिप्राय प्रकट किया—मित्रवृन्द! आप अपनी जातिके दीपक हैं! आप ही इस मरणोन्मुख जातिके आशास्थल हैं। आज हमपर विपत्तिकी घटाएँ छाई हुई हैं। ऐसी अवस्थामें हमारी आँखें आपकी ओर न उठें तो किसकी ओर उठेंगी। मित्रो, इस जीवनमें देश-सेवाके अवसर बड़े सौभाग्यसे मिला करते हैं। कौन जानता है कि परमात्माने तुम्हारी परीक्षाके लिये ही यह वज्र प्रहार किया हो। जनताको दिखा दो कि तुम वीरोंका हृदय रखते हो, जो कितने ही सकट पड़नेपर भी विचलित नहीं होता। हाँ, दिखा दो कि वह वीर प्रसविनी पवित्र भूमि, जिसने हरिश्चन्द्र और भरतको उत्पन्न किया, आज भी शून्यगर्भा नहीं है। जिस जातिके युवकोंमें अपने पीड़ित भाइयोंके प्रति ऐसी करुणा और यह अटल प्रेम है वह संसारमें सदैव यश-कीर्त्तिकी भागी रहेगी। आइये, हम कमर बाँधकर कर्मक्षेत्रमें उतर पड़ें। इसमें सन्देह नहीं कि काम कठिन है, राह बीहड़ है, आपको अपने अमोद-प्रमोद, अपने हाकीटेनिस, अपने मिल और मिल्टनको छोड़ना पड़ेगा। तुम जरा हिचकोगे, हटोगे और मुँह फेर लोगे, परन्तु भाइयो! जातीय सेवाका स्वर्गीय आनन्द सहजमें ही नहीं मिल सकता, हमारा पुरुषत्व, हमारा मनोबल, हमारा शरीर, यदि

जातिके काम न आवे तो वह व्यर्थ है। मेरी प्रबल आकांक्षा थी कि इस शुभ कार्यमें मैं तुम्हारा हाथ बँटा सकता, पर आज ही देहातोंमें भी बीमारी फैलनेका समाचार मिला है। अतएव मैं यहांका काम आपके सुयोग्य, सुदृढ हाथोंमें सौंपकर देहातमें जाता हूँ कि यथासाध्य देहाती भाइयोंकी सेवा करूँ। मुझे विश्वास है कि आप सहर्ष मातृभूमिके प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करेंगे।

इस तरह गला छुड़ाकर शर्माजी सन्ध्या समय स्टेशन पहुँचे। पर मन कुछ मलिन था। अपनी इस कायरता और निर्बलतापर मन ही मन लज्जित थे।

संयोगवश स्टेशनपर उनके एक वकील मित्र मिल गये। यह वही वकील थे जिनके आश्रयमें बाबूलालका निर्वाह होता था। यह भी भागे जा रहे थे। बोले, कहिये शर्माजी किधर चले? क्यों भाग खड़े हुए?

शर्माजीपर घड़ों पानी पड़ गया, पर सँभलकर बोले, भागूं क्यों

वकील—सारा शहर क्यों भागा जा रहा है?

शर्माजी—मैं ऐसा कायर नहीं हूं।

वकील—यार, क्यों बातें बनाते हो, अच्छा बताओ कहाँ जाते हो?

शर्माजी—देहातोंमें बीमारी फैल रही है, वहां कुछ "रिलीफ" का काम करूँगा।

वकील—यह बिलकुल झूठ है। अभी मैं डिस्ट्रिक्ट गजट देखके चला आता हूं। शहरके बाहर कहीं बीमारीका नाम नहीं है।

शर्माजी निरुत्तर होकर भी विवाद कर सकते थे। बोले, गजटको आप देववाणी समझते होंगे, मैं नहीं समझता।

वकील—आपके कानमें तो आकाशके दूत कह गये होंगे? साफ साफ क्यों नहीं कहते कि जानके डरसे भागा जा रहा हूं।

शर्माजी—अच्छा मान लीजिये यही सही। तो क्या पाप कर रहा हूं? सबको अपनी जान प्यारी होती है।

वकील—हां, अब आये राहपर। यह मरदोंकी-सी बात है। अपने जीवनकी रक्षा करना शास्त्रका पहला नियम है। लेकिन अब भूलकर भी देश भक्तिकी डींग न मारियेगा। इस कामके लिये बड़ी दृढ़ता और आत्मिक बलकी आवश्यकता है। स्वार्थ और देश-भक्तिमें विरोधात्मक अन्तर है। देशपर मिट जानेवालेको देश-सेवकका सर्वोच्च पद प्राप्त होता है। वाचालता और कोरी कलम घिसनेसे देश-सेवा नहीं होती। कमसे कम मैं तो अखबार पढ़नेको यह गौरव नहीं दे सकता। अब कभी बढ़-बढ़कर बातें न कीजियेगा। आप लोग अपने सिवा सारे संसारको स्वार्थान्ध समझते हैं इससे कहता हूं।

शर्माजीने इस उद्दण्डताका कुछ उत्तर न दिया। घृणासे मुंह फेरकर गाड़ीमें बैठ गये।

तीसरे ही स्टेशनपर शर्माजी उतर पड़े। वकीलकी कठोर बातोंसे खिन्न हो रहे थे। चाहते थे कि उसकी आंख बचाकर निकल जायँ, पर उसने देख ही लिया और हंसकर बोला, क्या आपके ही गांवमें प्लेगका दौरा हुआ है।

शर्माजीने कुछ उत्तर न दिया। बहलीपर जा बैठे। कई बेगार हाजिर थे। उन्होंने असबाब उठाया। फागुनका महीना था। आमोंके बौरसे महकती हुई मन्द-मन्द वायु चल रही थी। कभी-कभी कोयलकी सुरीली तान सुनाई दे जाती थी। खलिहानोंमें किसान आनन्दसे उन्मत्त हो होकर फाग गा रहे थे। लेकिन शर्माजीको अपनी फटकारपर ऐसी ग्लानि थी कि इन चित्ताकर्षक वस्तुओंका उन्हें कुछ ध्यान ही न हुआ।

थोड़ी देर बाद वे ग्राममें पहुँचे। शर्माजीके स्वर्गवासी पिता एक रसिक पुरुष थे। एक छोटा सा बाग, छोटा सा पक्का कुवां, बंगला, शिवजीका मन्दिर यह सब उन्हींके कीर्ति-चिह्न थे। वह गर्मीके दिनोंमें यहां रहा करते थे। पर शर्माजीके यहां आनेका यह पहला ही अवसर था। बेगारियोंने चारों तरफ सफाई कर रक्खी थी। शर्माजी बहलीसे

उतरकर सीधे बगलेमें चले गये, सैकड़ों असामी दर्शन करने आये थे, पर वह उनसे कुछ न बोले।

घड़ी रात जाते-जाते शर्माजीके नौकर टमटम लिये आ पहुँचे। कहार, साईस और रसोइया महाराज तीनोंने असामियोंको इस दृष्टिसे देखा मानो वह उनके नौकर हैं। साईसने एक मोटे-ताजे किसानसे कहा, घोड़ेको खोल दो।

किसान बेचारा डरता-डरता घोड़ेके निकट गया। घोड़ेने अनजान आदमीको देखते ही तेवर बदलकर कनौतियाँ खड़ी कीं। किसान डरकर लौट आया, तब साईसने उसे ढकेलकर कहा, बस,—निरे बछियाके ताऊ ही हो। हल जोतनेसे क्या अक्ल भी चली जाती है। यह लो घोड़ेको टहलाओ। मुँह क्या बनाते हो, कोई सिंह है कि खा जायगा?

किसानने भयसे काँपते हुए रास पकड़ी, उसका घबराया हुआ मुख देखकर हँसी आती थी। पग-पगपर घोड़ेको चौकन्नी दृष्टिसे देखता, मानो वह कोई पुलिसका सिपाही है।

रसोई बनानेवाले महाराज एक चारपाईपर लेटे हुए थे। कड़ककर बोले, अरे नउआ कहाँ है? चल पानी वानी ला, हाथ पैर धो दे।

कहारने कहा – अरे किसीके पास जरा सुरती-चूना हो तो देना। बहुत देरसे तमाखू नहीं खाई।

मुख्तार (कारिन्दा) साहबने इन मेहमानोंकी दावतका प्रबन्ध किया। साईस और कहारके लिये पूरियाँ बनने लगीं, महाराजको सामान दिया गया। मुख्तार साहब इशारेपर दौड़ते थे और दीन किसानोंका तो पूछना ही क्या, वे तो बिना दामोंके गुलाम थे। सच्चे स्वतन्त्र लोग इस समय सेवकोंके सेवक बने हुए थे।

६

कई दिन बीत गये। शर्माजी अपने बगलेमें बैठे हुए पत्र और पुस्तकें पढ़ा करते थे। वे उनके कथनानुसार नेताओं और महात्माओं-

के सत्संगका सुख लूटते थे। हालैंडके कृषिविधान, अमेरिकाके शिल्प-वाणिज्य और जर्मनीकी शिक्षा-प्रणाली आदि गूढ़ विषयोंपर विचार किया करते थे। गाँवमें ऐसा कौन था जिसके साथ बैठते? किसानोंसे बात-चीत करनेको उनका जी चाहता, पर न जाने क्यों वे उजड्ड; अक्खड़ लोग उनसे दूर रहते। शर्माजीका मस्तिष्क कृषि सम्बन्धी ज्ञानका भाण्डार था। हालैण्ड और डेनमार्ककी वैज्ञानिक खेती, उसकी उपजका परिमाण और वहाके कोआपरेटिव बैंक आदि गहन विषय उनकी जिह्वापर थे, पर इन गवारोंको क्या खबर? यह सब उन्हें झुक-कर पालागन अवश्य करते और कतराकर निकल जाते, जैसे कोई मरकहे बैलसे बचे। यह निश्चय करना कठिन है कि शर्माजीकी उनसे वार्तालाप करनेकी इच्छामें क्या रहस्य था, सच्ची सहानुभूति वा अपनी सर्वज्ञताका प्रदर्शन!

शर्माजीकी डाक शहरसे लाने और ले जानेके लिये दो आदमी प्रतिदिन भेजे जाते। वह लुईकूनेकी जल चिकित्साके भक्त थे। मेवोंका अधिक सेवन करते थे। एक आदमी इस कामके लिये भी दौड़ाया जाता था। शर्माजीने अपने मुख्तारसे सख्त ताकीद कर दी थी कि किसीसे मुफ्त काम न लिया जाय, तथापि शर्माजीको यह देखकर आश्चर्य होता था कि कोई इन कामोंके लिये प्रसन्नतासे नहीं जाता। प्रतिदिन [illegible] आदमी भेजे जाते थे। वह इसे भी बेगार समझते थे। मुख्तार साहबको प्रायः कठोरतासे काम लेना पड़ता था। शर्माजी किसानोंकी इस शिथिलताको मुटमुरदीके सिवा और क्या समझते। कभी कभी वह स्वयं क्रोधमे भरे हुए अपने शांति कुटीरसे निकल पड़ते और अपनी तीव्र वाक्य-शक्तिका चमत्कार दिखाने लगते। शर्माजीके घोड़ेके लिये घास-चारेका प्रबन्ध भी कुछ कम कष्टदायक न था। रोज सन्ध्या समय डाट-डपट और रोने चिल्लानेकी आवाज उन्हें सुनाई देती थी। एक कोलाहल-सा मच जाता था। पर

वह इस सम्बन्धमें अपने मनको इस प्रकार समझा लेते थे कि घोड़ा भूखों नहीं मर सकता, घासका दाम दे दिया जाता है, यदि इसपर भी यह हाय हाय होती है तो हुआ करे। शर्माजीको यह कभी नहीं सूझी कि जरा चमारोंसे पूछ ले कि घासका दाम मिलता है या नहीं। यह सब व्यवहार देख देखकर उन्हें अनुभव होता जाता था कि देहाती बड़े मुटमरद बदमाश हैं, इनके विषयमें मुख्तार साहब जो कुछ कहते हैं वह यथार्थ है। पत्रों और व्याख्यानोंमें उनकी अवस्थापर व्यर्थ गुल गपाड़ा मचाया जाता है, यह लोग इसी बर्तावके योग्य हैं। जो इनकी दीनता और दरिद्रताका राग अलापते हैं वह सच्ची अवस्थासे परिचित नहीं हैं। एक दिन शर्माजी महात्माओंकी संगतिसे उकता कर सैरको निकले। घूमते फिरते खलिहानोंकी तरफ निकल गए थे। वहाँ आमके वृक्षके नीचे किसानोंकी गाढ़ी कमाईके सुनहरे ढेर लगे हुए थे। चारों ओर भूसेकी आँधी सी उड़ रही थी। बैल अनाजका एक गाल खा लेते थे। यह सब उन्हींकी कमाई है, उनके मुँहसे आज जाबी देना बड़ी कृतघ्नता है। गाँवके बढ़ई, चमार, धोबी और कुम्हार अपना वार्षिक कर उगाहनेके लिये जमा थे। एक ओर नट ढोल बजा बजाकर अपने करतब दिखा रहा था। कवीश्वर महाराजकी अतुल काव्य शक्ति आज उमङ्ग पर थी।

शर्माजी इस दृश्यसे बहुत प्रसन्न हुए। परन्तु इस उल्लासमें उन्हें अपने कई सिपाही दिखाई दिये, जो लट्ठ लिये अनाजके ढेरोंके पास जमा थे। पुष्प वाटिकामें ठूंठ जैसा भद्दा दिखाई देता है अथवा ललित संगीतमें जैसे कोई बेसुरी तान कानोंको अप्रिय लगती है, उसी तरह शर्माजीकी सहृदयतापूर्ण दृष्टिमें ये मकराते हुए सिपाही दिखाई दिये। उन्होंने निकट जाकर एक सिपाहीको बुलाया। उन्हें देखते ही सबके सब पगड़िया सम्भालते दौड़े।

शर्माजीने पूछा, तुम लोग यहाँ इस तरह क्यों बैठे हो?

एक सिपाहीने उत्तर दिया, सरकार, हम लोग असामियोंके सिर, पर सवार न रहें तो एक कौड़ी वसूल न हो। अनाज घरमें जानेकी देर है, फिर तो वह सीधे बात भी न करेंगे—बड़े सरकश लोग हैं। हम लोग रातकी रात बैठे रहते हैं। इतनेपर भी जहाँ आख झपकी, ढेर गायब हुआ।

शर्माजीने पूछा, तुम लोग यहा कबतक रहोगे? एक सिपाहीने उत्तर दिया, हुजूर! बनियोंको बुलाकर अपने सामने अनाज तौलाते हैं। जो कुछ मिलता है उसमेंसे लगान काटकर बाकी असामीको दे देते हैं।

शर्माजी सोचने लगे, जब यह हाल है तो इन किसानोंकी अवस्था क्यों न खराब हो? यह बेचारे अपने धनके मालिक नहीं हैं। उसे अपने पास रखकर अच्छे अवसरपर नहीं बेच सकते। इस कष्टका निवारण कैसे किया जाय? यदि मैं इस समय इनके साथ रियायत कर दूँ तो लगान कैसे वसूल होगा।

इस विषयपर विचार करते हुए वह वहासे चल दिये। सिपाहियों-ने साथ चलना चाहा, पर उन्होंने मना कर दिया। भीड़-भाड़से उन्हें उलझन होती थी। अकेले ही गावमें घूमने लगे। छोटासा गाव था। पर सफाईका कहीं नाम न था। चारों ओरसे दुर्गन्ध उठ रही थी। किसीके दरवाजेपर गोबर सड़ रहा था, तो कहीं कीचड़ और कूड़ेका ही ढेर वायुको विषैली बना रहा था। घरोंके पास ही घूरपर खादके लिये गोबर फेंका हुआ था जिससे गावमें गन्दगी फैलनेके साथ साथ खादका सार अंश धूप और हवाके साथ गायब हो जाता था। गाव के मकान तथा रास्ते बेसिलसिले, बेढंग तथा टूटे-फूटे थे। मोरियोंके गन्दे पानीके निकासका कोई प्रबन्ध न होनेकी वजहसे दुर्गन्धसे दम घुटता था। शर्माजीने नाकपर रूमाल लगा ली। सास रोककर तेजीसे चलने लगे। बहुत जी घबराया तो दौड़े और हाँफते हुए एक सघन

नीमके वृक्षकी छायामें आकर खड़े हो गये। अभी अच्छी तरह साँस भी न लेने पाये थे कि बाबूलालने आकर पालागन किया और पूछा, क्या कोई साँड़ था?

शर्माजी साँस खींचकर बोले, साँड़से अधिक भयंकर विषैली हवा थी। ओह! यह लोग ऐसी गन्दगीमें कैसे रहते हैं?

बाबूलाल—रहते क्या हैं, किसी तरह जीवनके दिन पूरे करते हैं।

शर्माजी—पर यह स्थान तो साफ है?

बाबूलाल—जी हाँ, इस तरफ गाँवके किनारेतक साफ जगह मिलेगी।

शर्माजी—तो उधर इतना मैला क्यों है?

बाबूलाल—गुस्ताखी माफ हो तो कहूँ।

शर्माजी हँसकर बोले, प्राणदान माँगा होता। सच बताओ क्या बात है? एक तरफ ऐसी स्वच्छता और दूसरी तरफ वह गन्दगी?

बाबूलाल—यह मेरा हिस्सा है और वह आपका हिस्सा है। मैं अपने हिस्सेकी देख रेख स्वयं करता हूँ, पर आपका हिस्सा नौकरोंकी कृपाके अधीन है।

शर्माजी—अच्छा यह बात है! आखिर आप क्या करते हैं?

बाबूलाल—और कुछ नहीं, केवल ताकीद करता रहता हूँ। जहाँ अधिक मैलापन देखता हूँ स्वयं साफ कर देता हूँ। मैंने सफाईका एक इनाम नियत कर दिया है जो प्रतिमास सबसे साफ घरके मालिकको मिलता है। आइये बैठिये।

शर्माजीके लिये एक कुर्सी रख दी गई। वे उसपर बैठ गये और बोले—क्या आप आज ही आये हैं?

बाबूलाल—जी हाँ, कल तातील है। आप जानते ही हैं कि तातीलके दिन मैं यहाँ रहता हूँ।

शर्माजी—सभाका क्या रंग ढंग है?

बाबूलाल—वही चाल, बल्कि और भी खराब। 'सोशल मीटिंग

लीग' वाले भी गायब हो गये। गरीबोंके घरोंमें मुर्दे पड़े हुए हैं। बाजार बन्द हो गये। खानेको अनाज नहीं मिलता।

शर्माजी—भला बताओ तो ऐसी आगमें मैं वहाँ कैसे रहता? बस लोगोंने मेरी ही जान सस्ती समझ रखी है। जिस दिन मैं यहाँ आ रहा था आपके वकील साहब मिल गये, बेतरह गरम हो पड़े। मुझे देशभक्ति के उपदेश देने लगे। जिन्हें कभी भूलकर भी देशका ध्यान नहीं आता वे भी मुझे उपदेश देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। कुछ मुझे ही देश-भक्तिका दावा है? जिसे देखो, वही तो देशसेवक बना फिरता है।

जो लोग सहस्रों रुपये अपने भोग विलासमें फूकते हैं उनकी गणना भी जातिसेवकोंमें है। मैं तो फिर भी कुछ-न-कुछ करता ही हूं। मैं भी मनुष्य हूँ, कोई देवता नहीं, धनकी अभिलाषा अवश्य है। मैं भी अपना जीवन पत्रोंके लिये लेख लिखनेमें काटता हूँ, देश-हितकी चिन्तामें मग्न रहता हूं, उसके लिये मेरा इतना सम्मान बहुत समझा जाता है। जब किसी सेठजी या किसी वकील साहबके दरेदौलतपर हाजिर हो जाऊँ तो वह कृपा करके मेरा कुशल समाचार पूछ लें। उसपर भी यदि दुर्भाग्यवश किसी चन्देके सम्बन्धमें जाता हूं तो लोग मुझे यमका दूत समझते हैं। ऐसी रुखाईका व्यवहार करते हैं जिससे सारा उत्साह भंग हो जाता है। यह सब आपत्तियाँ तो मैं झेलूँ, पर जब किसी सभाका सभापति चुननेका समय आता है तो कोई वकील साहब इसके पात्र समझे जाते हैं जिन्हें अपने धनके सिवा उक्त पदका कोई अधिकार नहीं। तो भाई, जो गुड़ खाय वह कान छिदावे। देश हितैषिताका पुरस्कार यही जातीय सम्मान है, जब वहाँतक मेरी पहुँच ही नहीं तो व्यर्थ जान क्यों दूँ? यदि यह आठ वर्ष मैंने लक्ष्मीकी आराधनामें व्यतीत किये होते तो अबतक मेरी गिनती बड़े आदमियोंमें होती। अभी मैंने जितने परिश्रमसे देहाती बैंकोंपर लेख लिखा, महीनों उसकी तैयारीमें लगे, सैकड़ों पत्र पत्रिकाओंके पन्ने उलटने पड़े, पर किसीने

उसके पढनेका कष्ट भी न उठाया। यदि इतना परिश्रम किसी और काममें किया होता तो कमसे कम स्वार्थ तो सिद्ध होता। मुझे ज्ञात हो गया कि इन बातोंको कोई नहीं पूछता। सम्मान और कीर्ति यह सब धनके नौकर हैं।

बाबूलाल—आपका कहना यथार्थ ही है। पर आप जैसे महानुभाव इन बातोंको मनमें लायेंगे तो यह काम कौन करेगा?

शर्माजी—वही करेंगे जो 'आनरेबुल' बने फिरते हैं या जो नगरके पिता कहलाते हैं। मैं तो अब देशाटन करूँगा, संसारकी हवा खाऊँगा।

बाबूलाल समझ गये कि यह महाशय इस समय आपेमें नहीं हैं। विषय बदलकर पूछा, यह तो बताइये, आपने देहातको कैसा पसन्द किया? आप तो पहले ही पहल यहाँ आये हैं।

शर्माजी—बस, यही कि बैठे बैठे जी घबराता है। हां, कुछ नये अनुभव अवश्य प्राप्त हुए हैं। कुछ भ्रम दूर हो गये। पहले समझता था कि किसान बड़े दीन दुःखी होते हैं। अब मालूम हुआ कि यह लोग बड़े मुटमरद, अनुदार और दुष्ट हैं। सीधे बात न सुनेंगे। पर कड़ाईसे जो काम चाहे करा लो। बस निरे पशु हैं। और तो और लगान के लिये भी उनके सिरपर सवार रहनेकी जरूरत है। टल जाओ तो कौड़ी वसूल न हो। नालिश कीजिये, बेदखली जारी कीजिये, कुर्की कराइये, यह सब आपत्तियां सहेंगे पर समयपर रुपया देना नहीं जानते। यह सब मेरे लिये नई बातें हैं। मुझे अबतक इनसे जो सहानुभूति थी वह अब नहीं है। पत्रोंमें उनकी हीनावस्थाके जो मरसिये गाये जाते हैं वह सर्वथा कल्पित हैं?

बाबूलालने सोचकर जवाब दिया, मुझे तो अबतक कोई शिकायत नहीं हुई। मेरा अनुभव यह है कि यह लोग बड़े शीलवान्, नम्र और कृतज्ञ होते हैं। परन्तु उनके ये गुण प्रकटमें नहीं दिखाई देते। उनसे मिलिये और उन्हें मिलाइये तब उनके जौहर खुलते हैं। उनपर

विश्वास कीजिये तब वह आपपर विश्वास करेंगे। आप कहेंगे इस विषयमें अग्रसर होना उनका काम है और आपका यह कहना उचित भी है, लेकिन शताब्दियोंसे वह इतने पीसे गये हैं, इतनी ठोकरें खाई हैं कि उनमें स्वाधीन गुणोंका लोप-सा हो गया है। जमींदारको वह एक हौआ समझते हैं जिसका काम उन्हें निगल जाना है। वह उसका मुकाबिला नहीं कर सकते, इसलिये छल और कपटसे काम लेते हैं, जो निर्बलोंका एक मात्र आधार है। पर आप एक बार उनके विश्वास पात्र बन जाइये, फिर आप कभी उनकी शिकायत न करेंगे।

बाबूलाल यह बातें कर ही रहे थे कि कई चमारोंने घासके बड़े बड़े गट्ठे लाकर डाल दिये और चुपचाप चले गये। शर्माजीको आश्चर्य हुआ। इसी घासके लिये इनके बंगलेपर रोज हाय हाय होती है और यहां किसीको खबर नहीं हुई। बोले, आखिर विश्वास जमानेका कोई उपाय भी है?

बाबूलालने उत्तर दिया, आप स्वयं बुद्धिमान हैं। आपके सामने मेरा मुँह खोलना धृष्टता है। मैं इसका एकही उपाय जानता हूँ। उन्हें किसी कष्टमें देखकर उनकी मदद कीजिये। मैंने उन्हींके लिये वैद्यक सीखा और एक छोटा मोटा औषधालय अपने साथ रखता हूँ। रुपया माँगते हैं तो रुपया अनाज माँगते हैं तो अनाज देता हूं, पर सूद नहीं लेता। इससे मुझे कोई हानि नहीं होती, दूसरे रूपमें सूद अधिक मिल जाता है। गाँवमें दो अन्धी स्त्रिया और दो अनाथ लड़कियाँ हैं, उनके निर्वाहका प्रबन्ध कर दिया है, होता सब उन्हींकी कमाईसे है, पर नेकनामी मेरी होती है।

इतनेमें कई असामी आये और बोले, भैया पोत ले लो।

शर्माजीने सोचा, इसी लगानके लिये मेरे चपरासी खलिहानमें चारपाई डालकर सोते हैं और किसानोंको अनाजके ढेरके पास फटकने नहीं देते और वही लगान यहां इस तरह आपसे आप चला आता है।

चोले, यह सब तो तब ही हो सकता है जब जमींदार आप गाँवमे रहे।

बाबूलालने उत्तर दिया, जी हाँ, और क्या? जमींदारके गाँवमें न रहनेमे इन किसानोकी बड़ी हानि होती है। कारिंदो और नौकरोंमे यह आशा करनी भूल है कि वह इनके साथ अच्छा बर्ताव करेंगे क्योंकि उनको तो अपना उल्लू सीधा करनेमे काम रहता है। जो किसान उनकी मुट्ठी गरम करते हैं उन्हें मालिकके सामने सीधा और जो कुछ नहीं देते उन्हें बदमाश और सरकश बतलाते हैं। किसानोंको बात बातके लिये चूसते हैं, किसान छान छवाना चाहे तो उन्हे दे, दरवाजे-पर एक खूंटातक गाड़ना चाहे ता उन्हे पूजे, एक छप्पर उठानेके लिये दस रुपये जमींदारको नजराना दे तो दो रुपये मुंशीजीको जरूर ही देने होंगे। कारिंदेको घी-दूध मुफ्त खिलावे। कहीं कहीं तो गेहूँ चावलतक मुफ्तमे हजम कर जाते हैं। जमींदार तो किसानोंको चूसते ही हैं, कारिंदे भी कम नहीं चूसते। जमींदार तीन पावके भावमें रुपयेका सेरभर घी ले तो मुंशीजीका अपने घर अपने साले बहनोइयोके लिये अठारह छटाक चाहिये ही। तनिक-तनिक सी बातके लिये डाड़ और जुर्माना देते देते किसानोंके नाकमें दम हो जाता है। आप जानते हैं इसीसे और कहींकी ३०) की नौकरी छोड़कर भी जमींदारोंकी कारिंद-गिरी लोग ८), १०) में स्वीकार कर लेते हैं, क्योंकि ८), १०) का कारिंदा सालमे ८००), १०००) ऊपरसे कमाता है। खेद तो यह है कि जमींदार लोगोंमें शिक्षाकी उन्नतिके साथ साथ शहरमें रहनेकी प्रथा दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। मालूम नहीं आगे चलकर इन बेचारोंकी क्या गति होगी?

६

शर्माजीको बाबूलालकी बातें विचारपूर्ण मालूम हुईं। पर वह सुशिक्षित मनुष्य थे। किसी बातको चाहे वह कितनी ही यथार्थ क्यों न हो, बिना तर्कके ग्रहण नहीं कर सकते थे। बाबूलालको वह सामान्य

बुद्धिका आदमी समझते आये थे। इस भावमें एकाएक परिवर्त्तन हो जाना असम्भव था। इतना ही नहीं इन बातोंका उल्टा प्रभाव यह हुआ कि वह बाबूलालसे चिढ गये। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि बाबूलाल अपने सुप्रबन्धके अभिमानमें मुझे तुच्छ समझता है, मुझे ज्ञान सिखानेकी चेष्टा करता है। जो सदैव दूसरोंको सद्‌ज्ञान सिखाने और सम्मान दिखानेका प्रयत्न किया हो वह बाबूलाल जैसे आदमीके सामने कैसे सिर झुकाता? अतएव जब यहांसे चले तो शर्माजीकी तर्कशक्ति बाबूलालकी बातोंकी आलोचना कर रही थी। मैं गाँवमें क्योंकर रहूं? क्या जीवनकी सारी अभिलाषाओंपर पानी फेर दूं? गँवारोंके साथ बैठे बैठे गप्पें लड़ाया करूं? घड़ी आध घडी मनोरञ्जनके लिये उनसे बातचीत करना सम्भव है पर यह मेरे लिये असह्य है कि वह आठों पहर मेरे सिरपर सवार रहे। मुझे तो उन्माद हो जाय। माना कि उनकी रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है, पर यह कदापि नहीं हो सकता कि उनके लिये मैं अपना जीवन नष्ट कर दूं। बाबूलाल बन जानेकी क्षमता मुझमें नहीं है कि जिसमें बेचारे इस गांवकी सीमासे बाहर नहीं जा सकते। मुझे संसारमें बहुत काम करना है, बहुत नाम करना है। ग्राम्य जीवन मेरे लिये प्रतिकूल ही नहीं बल्कि प्राणघातक भी है।

यही सोचते हुए वह बंगलेपर पहुँचे तो क्या देखते हैं कि कई कान्स्टेबल बंगलेके बरामदेमें लेटे हुए हैं। मुख्तार साहब शर्माजीको देखते ही आगे बढ़कर बोले, हुजूर! बड़े दारोगाजी छोटे दारोगाजीके साथ आये हैं। मैंने उनके लिये पलंग कमरेमें ही बिछवा दिये हैं। ये लोग जब इधर आ जाते हैं तो यहीं ठहरा करते हैं। देहातमें इनके योग्य स्थान और कहाँ है? अब मैं इनसे कैसे कहता कि कमरा खाली नहीं है। हुजूरका पलंग ऊपर बिछवा दिया है।

शर्माजी अपने अन्य देश-हितचिंतक भाइयोंकी भांति पुलिसके घोर विरोधी थे। पुलिसवालोंके अत्याचारोंके कारण उन्हें बड़ी घृणाकी

दृष्टिमे देखते थे। उनका सिद्धान्त था कि यदि पुलिसका आदमी प्यासमे मर भी जाय तो उसे पानी न देना चाहिये। अपने कारिंदेमे यह समाचार सुनते ही उनके शरीरमें आग-सी लग गयी। कारिंदेकी ओर लाल आखोंसे देखा और लपककर कमरेकी ओर चले कि बेईमानों-का बोरिया बँधना उठाकर फेंक दू। वाह! मेरा घर न हुआ कोई होटल हुआ। आकर डट गये। तेवर बदले हुए बरामदेमें जा पहुँचे कि इतनेमें छोटे दारोगा बाबू कोकिला सिहने कमरेसे निकलकर पालागन किया और हाथ बढाकर बोले—अच्छी साइतमे चला था कि आपके दर्शन हो गये। आप मुझे भूल तो न गये होंगे?

यह महाशय दो साल पहले "सोसल सर्विस लीग" के उत्साही सदस्य थे। इण्टरमिडियेट फेल हो जानेके बाद पुलिसमें दाखिल हो गये थे। शर्माजीने उन्हें देखते ही पहचान लिया। क्रोध शात हो गया। मुस्कुरानेकी चेष्टा करके बोले, भूलना बडे आदमियोंका काम है। मैंने तो आपको दूरहीसे पहचान लिया था। कहिये, इसी थानेमें हैं क्या? कोकिला सिंह बोले, जी हा आजकल यहीं हू। आइये, आपको दारोगाजीसे इंट्रोड्यूस (परिचित) करा दू।

भीतर आराम कुरसीपर लेटे दारोगा जुल्फिकार अलीखा हुक्का पी रहे थे। बडे डीलडौलके मनुष्य थे। चेहरेसे गेव टपकता था। शर्माजीको देखते ही उठकर हाथ मिलाया और बोले, जनाबसे नियाज हासिल करनेका शौक मुद्दतसे था। आज खुशनसीबीसे मौका भी मिल गया। इस मुदाखिलत बेजाको मुआफ फरमाइयेगा।

शर्माजीको आज मालूम हुआ कि पुलिसवालोंको अशिष्ट कहना अन्याय है। हाथ मिलाकर बोले, यह आप क्या फरमाते हैं, यह आपका घर है।

पर इसके साथ ही पुलिसपर आक्षेप करनेका ऐसा अच्छा अवसर हाथोंमे नहीं जाने देना चाहते थे। कोकिला सिहसे बोले, आपने तो

पिछले साल कालेज छोड़ा है, लेकिन आपने नौकरी भी की तो पुलिसकी

बड़े दारोगाजी यह ललकार सुनकर सभल बैठे और बोले, क्यों जनाब! क्या पुलिस ही सारे मुहकमोंसे गया गुजरा है? ऐसा कौनसा सेगा है जहाँ रिश्वतका बाजार गर्म नहीं। अगर आप ऐसे एक भी सेगेका नाम बता दीजिये तो मैं ताउम्र आपकी गुलामी करूँ। सुहबत करके रिश्वत न लेना मुहाल है। तालीमके सेगेको बेलौस कहा जाता है मगर मुझको इसका खूब तजरबा हो चुका है। अब मैं किसी-के रास्तबाजीके दावेको तसलीम नहीं कर सकता। और दूसरे सेगोंकी निस्बत तो मैं नहीं कह सकता, मगर पुलिसमें जो रिश्वत नहीं लेता उसे मैं अहमक समझता हूँ। मैंने दो एक दयानतदार सब इन्सपेक्टर देखे हैं पर उन्हें हमेशा तबाह देखा। कभी मातूब, कभी मुअत्तल, कभी बर्खास्त। चौकीदार और कान्स्टेबल बेचारे थोड़ी औकातके आदमी हैं, उनका गुजारा क्योंकर हो? वही हमारे हाथ पाव हैं, उन्हींपर हमारी नेकनामीका दारमदार है। जब वह खुद भूखों मरेंगे तब हमारी मदद क्या करेंगे। जो लोग हाथ बढाकर लेते हैं, खुद खाते हैं, दूसरोंको खिलाते हैं, अफसरोंको खुश रखते हैं, उनका शुमार कारगुजार, नेकनाम आदमियोंमें होता है। मैंने तो यही अपना उसूल बना रखा है और खुदाका शुक्र है कि अफसर और मातहत सभी खुश हैं।

शर्माजीने कहा—इसी वजहसे तो मैंने ठाकुर साहबसे कहा था कि आप क्यों इस सेगेमें आये?

जुल्फिकार अलीखा गरम होकर बोले, आये तो मुहकमेपर कोई एहसान नहीं किया। किसी दूसरे सेगेमें होते तो अभीतक ठोकरें खाते होते, यहाँ घोड़ेपर सवार नौशा बने घूमते हैं। मैं तो बात सच्ची कहता हूँ, चाहे किसीको अच्छी लगे या बुरी। इनसे पूछिये, हरामकी कमाई अकेले आजतक किसीको हजम हुई है? यह नये लोग जो आते हैं उनकी यह आदत होती है कि जो कुछ मिले अकेले ही हजम कर लें।

चुपके-चुपके लेते हैं और थानेके अहलकार मुँह ताकते रह जाते हैं। दुनियाकी निगाहमे ईमानदार बनना चाहते हैं पर खुदासे नहीं डरते। अरे, जब हम खुदाहीसे नहीं डरते तो आदमियोंका क्या खौफ? ईमानदार बनना हो तो दिलमे बनो। सचाईका स्वाग क्यों भरते हो? यह हजरत छोटी-छोटी रकमोंपर गिरते हैं। मारे गरूरके किसी आदमीसे राय तो लेते नहीं। जहाँ आसानीसे सौ रुपये मिल सकते हैं वहाँ पाच रुपयेमें बुलबुल हो जाते हैं। कहीं दूधवालेके दाम मार लिये, कहीं हजामके पैसे दबा लिये, कहीं बनियेमे निर्खके लिये झगड बैठे। यह अफसरी नहीं टुच्चापन है, गुनाह बेलज्जत, फायदा तो कुछ नहीं, बद नामी मुफ्त। मैं बडे-बडे शिकारोंपर निगाह रखता हू, यह पिद्दी और बटेर मातहतोंके लिये छोड देता हूँ। हलफमे कहता हू, गरज बुरी शै है। रिश्वत देनेवालोंमे ज्यादा अमहक अन्धे आदमी दुनियामें न होंगे। ऐसे कितने ही उल्लू आते हैं जो महज यह चाहते हैं कि मैं उनके किसी पट्टीदार या दुश्मनको दो चार खोटी खरी सुना दूँ। कई ऐसे बेईमान जमींदार आते हैं जो यह चाहते हैं कि वह असामियोंपर जुल्म करते रहें और पुलिस दखल न दे। इतने हीके लिये वह सैकड़ों रुपये मेरी नजर करते हैं और खुशामद घालूमें। ऐसे अक्लके दुश्मनोंपर रहम करना हिमाकत है। जिलेमें मेरे इस इलाकेको सोनेकी खान कहते हैं। इसपर सबके दात रहते हैं। रोज एक-न एक शिकार मिलता रहता है। जमींदार निरे जाहिल, लण्ठ, जरा जरासी बातपर फौजदारियाँ कर बैठते हैं। मैं तो खुदासे दुआ करता हूँ कि यह हमेशा इसी जहालतके गढ़ेमें पडे रहें। सुनता हू, कोई साहब आमतालीमका सवाल पेश कर रहे हैं, उस भलेमानुसको न जाने यह क्या धुन है। शुक्र है कि हमारी आली फहम सरकारने उसे नामजूर कर दिया। बस, इस सारे इलाकेमें एक यही आपका पट्टीदार अलबत्ता समझदार आदमी है। उसके यहाँ मेरी या और किसीकी दाल नहीं गलती और लुत्फ यह कि कोई उसे

नाखुश नहीं। बस मीठी-मीठी बातोंसे मन भर देता है। अपने असामियों के लिये जान देनेको हाजिर और हलफसे कहता हूँ कि अगर मैं जमींदार होता तो इसी शख्सका तरीका अख्तियार करता। जमींदारका फर्ज है कि अपने असामियोंको जुल्मसे बचाये। उनपर शिकारियोंका वार न होने दे। बेचारे गरीब किसानोंकी जानके तो सभी गाहक होते हैं और हलफसे कहता हूं, उनकी कमाई उनके काम नहीं आती। उनकी मेहनतका मजा हम लूटते हैं। यों तो जरूरतसे मजबूर होकर इन्सान क्या नहीं कर सकता, पर हक यह है कि इन बेचारोंकी हालत वाकई रहमके काबिल है और जो शख्स उनके लिये सीना सिपर हो सके उसके कदम चूमने चाहिये। मगर मेरे लिये तो वही आदमी सबसे अच्छा है जो शिकारमें मेरी मदद करे।

शर्माजीने इस बकवादको बड़े ध्यानसे सुना। वह रसिक मनुष्य थे। इसकी मार्मिकतापर मुग्ध हो गये। सहृदयता और कठोरताके ऐसे विचित्र मिश्रणसे उन्हें मनुष्योंके मनोभावोंका एक कौतूहल-जनक परिचय प्राप्त हुआ। ऐसी वक्तृताका उत्तर देनेकी कोशिश करना व्यर्थ था। बोले--क्या कोई तहकीकात है या महज गश्त?

दारोगाजी बोले, जी नहीं, महज गश्त। आजकल किसानोंके फसल के दिन हैं। यही जमाना हमारी फसलका भी है। शेरको भी तो मांदमें बैठे बैठे शिकार नहीं मिलता। जंगलमें घूमता है। हम भी शिकारकी तलाशमें हैं। किसीपर खुफिया फरोशीका इलजाम लगाया, किसीको चोरीका माल खरीदनेके लिये पकड़ा, किसीको हमलहरामका झगड़ा उठाकर फांसा। अगर हमारे नसीबसे डाका पड़ गया तो हमारी पांचों अंगुलियां घीमें समझिये। डाकू तो नोच खसोटकर भागते हैं। असली डाका हमारा पड़ता है। आस-पासके गांवोंमें झाड़ू फेर देते हैं। खुदासे शबोरोज दुआ किया करते हैं कि या परवरदिगार! कहींसे रिजक भेज। झूठे सच्चे डाकेकी खबर आवे। अगर देखा कि तकदीरपर

शाकिर रहनेसे काम नहीं चलता तो तदबीरसे काम लेते हैं। जरासे इशारेकी जरूरत है, डाका पड़ते क्या देर लगती है! आप मेरी साफ-गोईपर हैरान होते होंगे। अगर मैं अपने सारे कथकड़े बयान करूं तो आप यकीन न करेंगे और लुत्फ यह कि मेरा शुमार जिलेके निहायत होशियार, कारगुजार, दयानतदार सबइन्स्पेक्टरोंमें है। फर्जी डाके डल-वाता हूं। फर्जी मुल्जिम पकड़ता हूं। मगर सजाएं असली दिलवाता हूं। शहादतें ऐसी गढाता हूं कि कैसा ही बैरिस्टरका चचा क्यों न हो, उनमें गिरफ्तार नहीं कर सकता।

इतनेमें शहरसे शर्माजीकी डाक आ गयी। वे उठ खड़े हुए और बोले, दारोगाजी, आपकी बातें बड़ी मजेदार होती हैं। अब इजाजत दीजिये। डाक आ गई है। जरा उसे देखना है।

७

चाँदनी रात थी। शर्माजी खुली छतपर लेटे हुए एक समाचार पत्र पढनेमें मग्न थे। अकस्मात् कुछ शोर-गुल सुनकर नीचेकी तरफ झाका तो क्या देखते हैं कि गावके चारों तरफसे कान्स्टेबलोंके साथ किसान चले आ रहे हैं? बहुतसे आदमी खलिहानकी तरफसे बड़-बड़ाते आते थे। बीच-बीचमें सिपाहियोंकी डाट फटकारकी आवाजें भी कानोंमें आती थीं। यह सब आदमी बगलेके सामने सहनमें बैठते जाते थे। कहीं-कहीं स्त्रियोंका आर्त्तनाद भी सुनाई देता था। शर्माजी हैरान थे कि मामला क्या है, इतनेमें दारोगाजीकी भयंकर गरज सुनाई पड़ी। हम न मानेंगे, सब लोगोंको थाने चलना होगा।

फिर सन्नाटा हो गया। मालूम होता था कि आदमियोंमें काना-फूसी हो रही है। बीच बीचमें मुख्तार और सिपाहियोंके हृदय-विदारक शब्द आकाशमें गूज उठते। फिर ऐसा जान पड़ा कि किसीपर मार पड़ रही है। शर्माजीसे अब न रहा गया। वह सीढियोंके द्वारपर आये।

कमरेसे झाँककर देखा। मेजपर रुपये गिने जा रहे थे। दारोगाजीने फर्माया, इतने बड़े गाँवमें सिर्फ यही ?

मुख्तारसाहबने उत्तर दिया, अभी घबराइये नहीं। अबकी मुखियों-की खबर ली जाय। रुपयोंका ढेर लग जाता है।

यह कहकर मुख्तारने कई किसानोंको पुकारा पर कोई न बोला, तब दारोगाजीका गगन भेदी नाद सुनाई दिया, यह लोग सीधेसे न मानेंगे, मुखियोंको पकड़ लो, हथकड़ियाँ भर दो। एक एकको डामल भिजवाऊँगा।

यह नादिरशाही हुक्म पातेही कान्स्टेबलोंका दल उन आदमियोंपर टूट पड़ा। ढोल-सी पिटने लगी। क्रन्दनध्वनिसे आकाश गूँज उठा। शर्माजीका रक्त खौल रहा था। उन्होंने सदैव न्याय और सत्यकी सेवा की थी। अन्याय और निर्दयताका यह करुणात्मक अभिमान उनके लिये असह्य था।

अचानक किसीने रोकर कहा, दोहाई सरकारकी, मुख्तार साहब हम लोगनका हक नाहक मरवाये डारत हैं।

शर्माजी क्रोधमें काँपते हुए धम धम कोठेसे उतर पड़े। यह दृढ संकल्प कर लिया कि मुख्तार साहबको मारे हंटरोंके गिरा दूँ, पर जन-सेवामें मनोवेगाके दबानेकी बड़ी प्रबल शक्ति होती है। रास्ते हीमें सँभल गये। मुख्तारको बुलाकर कहा, मुन्शीजी, आपने यह क्या गुल-गपाड़ा मचा रखा है।

मुख्तारने उत्तर दिया, हुजूर, दारोगाजीने इन्हें एक डाकेकी तह-किकातमें तलब किया है।

शर्माजी बोले, जी हाँ, इस तहकिकातका अर्थ मैं खूब समझता हूँ। घण्टेभरसे इसका तमाशा देख रहा हूँ। तहकिकात हो चुकी या कुछ कसर बाकी है ?

मुख्तारने कहा, हुजूर! दारोगाजी जानें, मुझे क्या मतलब ?

दारोगाजी बडे चतुर पुरुष थे। मुख्तार साहबकी बातोंमे उन्होंने समझा था कि शर्माजीका स्वभाव भी अन्य जमींदारोंके सदृश है। इसलिये वह बेखटके थे, पर इस समय उन्हे अपनी भूल ज्ञात हुई। शर्माजीके तेवर देखे, नेत्रोंमे क्रोधाग्निकी ज्वाला निकल रही थी, शर्माजीकी शक्तिशालीनतासे भलीभॉति परिचित थे, समीप आकर बोले, आपके इस मुख्तारने मुझे बडा धोखा दिया, वरना मे हलफमे कहता हू कि यहा यह आग न लगती। आप मेरे मित्र बाबू कोकिला सिंहके मित्र हैं और इस नातेसे मैं आपको अपना मुरब्बी समझता हू, पर इस नामरदूद बदमाशने मुझे बडा चकमा दिया। मैं भी ऐसा अहमक था कि इसके चक्करमें आ गया। मैं बहुत नादिम हू कि हिमाकतके बाइस जनाबको इतनी तकलीफ हुई। मैं आपसे मुआफीका सायल हू। मेरी एक दोस्ताना इल्तमाश यह है कि जितनी जल्दी मुमकिन हो इस शख्स को बरतरफ कर दीजिये। यह आपकी रियासतको तबाह किये डालता है। अब मुझे भी इजाजत हो कि अपने मनहूस कदम यहासे ले जाऊ। मैं हलफमे कहता हू कि मुझे आपको मुह दिखाते शर्म आती है।

८

यहाँ तो यह घटना हो रही थी, उधर बाबूलाल अपने चौपालमे बैठे हुए इसके सम्बन्धमें अपने कई असामियोंसे बात-चीत कर रहे थे। शिवदीनने कहा, भैया, आप जाके दारोगाजीको काहे नाहीं समझावत हौ। राम राम! ऐसन अन्धेर!

बाबूलाल—भाई, मैं दूसरेके बीचमें बोलनेवाला कौन? शर्माजी तो वहीं हैं, वह आपही बुद्धिमान हैं, जो उचित होगा करेंगे। यह आज कोई नई बात थोडे ही है। देखते तो हो कि आये दिन एक न एक उपद्रव मचा ही रहता है। मुख्तार साहबका इसमें भला होता है। शर्माजीसे मैं इस विषयमें इसलिये कुछ नहीं कहता कि शायद वे यह समझें कि मैं ईर्षावश शिकायत कर रहा हू।

रामदासने कहा, शर्माजी कोठापर हैं और नीचू बेचारनपर मार परत है। देखा नाहीं जात है। जिनसे मुराद पाय जात हैं उनका छोड़े देत हैं। मोका तो जान परत है कि ई तहकिकात सहकिकात सब रुपैयन के खातिर कीन जात है।

बाबूलाल—और काहेके लिये की जाती है। दारोगाजी तो ऐसे ही शिकार ढूंढा करते हैं, लेकिन देख लेना शर्माजी अबकी मुख्तार साहब की जरूर खबर लेंगे! वह ऐसे वैसे आदमी नहीं हैं कि यह अन्धेर अपनी आँखोंसे देखें और मौन धारण कर लें, हां, यह तो बताओ, अबकी कितनी ऊख बोई है।

रामदास—ऊख बोये ढेर रहे मुदा दुष्टनके मारे बचै पावै। तू मानत नाहीं हो भैया, पर आखन देखो बात है कि कराह-क-कराह रस जर गवा और छटाको भर माल न परा। न जानी अस कौन मन्तर मार देत है।

बाबूलाल—अच्छा, अबकी मेरे कहनेसे यह हानि उठा लो। देखूं ऐसा कौन बड़ा सिद्ध है जो कराहीका रस उड़ा देता है? जरूर इसमें कोई-न कोई बात है। इस गावमें जितने कोल्हू जमीनमें गड़े पड़े हैं, उनसे विदित होता है कि पहले यहां ऊख बहुत होती थी, किन्तु अब बेचारोंका मुँह भी मीठा नहीं होने पाता।

शिवदीन—अरे भैया! हमरे होस में ई सब कोल्हू चलत रहे हैं। मार पूसमें रातभर मेला लगा रहत रहा, पर जबसे ई नासिनी बिया फैली है तबसे कोऊका ऊखके नेरे जायेका हियाव नाहीं परत है।

बाबूलाल—ईश्वर चाहेंगे तो फिर वैसी ही ऊख लगेगी। अबकी मैं इस मन्त्रको उलट दूंगा। भला यह तो बताओ अगर ऊख लग जाय और माल पड़े तो तुम्हारी पट्टीमें एक हजारका गुड़ हो जायगा?

हरखूने हँसकर कहा, भैया, कैसी बात कहते हो—हजार तो पाच

बोशामें मिल सकत है । हमरे पट्टीमे २५ बीघामे कम ऊख नाहीं बा।
कुछो न परै तो अढाई हजार रुप्ट नहीं गये हैं ।

बाबूलाल—तब ता आशा है कि कोई पचास रुपये बयाईमें मिल जायँग । यह रुपये गावकी सफाईमे खर्च होंगे ।

इतनेमे एक युवा मनुष्य दौड़ता हुआ आया और बोला, भैया ! उह तहकिकात देखे गइल रहलीं । दरोगाजी सबका डाटत मारत रहें। देवी मुखिया बोला, मुख्तार साहब, हमका चाहे काट डागे मुदा हम एक कौड़ी न देबै । थाना कचहरी जहा कहो चलैके तैयार हुई । ई सुनके मुख्तार लाल हुइ गयेन । चार सिपाहिनसे कहेन कि एहिका पकरिके खूब मारो, तब देवी चिल्लाय चिल्लाय रोवै लागल, एतनेमें सरमाजी कोठापरसे खट खट उतरेन और मुख्तारका लगे डाटै । मुख्तार टाटे झुर होय गयेन । दरोगाजी धीरेसे घोड़ा मगवायके भागेन । मनई सरमाजीका असीसत चला जात हैं ।

बाबूलाल—यह तो मैं पहले ही कहता था कि शर्माजीसे यह अन्याय न देखा जायगा ।

इतनेमें दूरसे एक लालटेनका प्रकाश दिखाई दिया । एक आदमी के साथ शर्माजी आते हुए दिखाई दिये । बाबूलालने असामियोंको वहासे हटा दिया, कुरसी रखवा दी और आगे बढकर बोले, आपने इस समय क्यों कष्ट किया, मुझको बुला लिया होता ।

शर्माजीने नम्रतासे उत्तर दिया, आपको किस मुहसे बुलाता । मेरे सारे आदमी वहा पीटे जा रहे थे, उनका गला दबाया जा रहा था और आप पास न फटके । मुझे आपसे मददकी आशा थी । आज हमारे मुख्तारने गावमें लूट मचा दी थी । मुख्तारको और क्या कहू । बेचारा थोडे औकातका आदमी है । खेद तो यह है किआपके दारोगाजी भी उसके सहायक थे । कुशल यह थी कि मैं वहा मौजूद था ।

बाबूलाल—मैं बहुत लज्जित हू कि इस अवसरपर आपकी कुछ

सेवा न कर सका। पर बात यह है कि मेरे वहाँ जानेसे मुख्तार साहब और दारोगा दोनों ही अप्रसन्न होते। मुख्तार मुझसे कई बार कह चुके हैं कि आप मेरे बीचमें न बोला कीजिये। मैं आपसे कभी गाँवकी यह दशा इस भयसे न कहता था कि शायद आप समझें कि मैं ईर्षाके कारण ऐसा कहता हूँ। यहाँ यह कोई नई बात नहीं है। आये दिन ऐसी ही घटनाएँ होती रहती हैं। और कुछ इसी गाँवमें नहीं, जिस गाँव-को देखिये, यही दशा है। इन सब आपत्तियोंका एकमात्र कारण यह है कि देहातोंमें कर्म परायण, विद्वान् और नीतिज्ञ मनुष्योंका अभाव है। शहरके सुशिक्षित जमींदार जिनसे उपकारकी बहुत कुछ आशा की जाती है, सारा काम कारिन्दोंपर छोड़ देते हैं। रहे देहातके जमींदार सो निरक्षर भट्टाचार्य हैं। अगर कुछ थोड़े बहुत पढ़े भी हैं तो अच्छी संगति न मिलनेके कारण उनमें बुद्धिका विकास नहीं है। कानूनके थोड़ेसे दफे सुन-सुना लिये हैं, बस उसीकी रट लगाया करते हैं। मैं आपसे सत्य कहता हूँ, मुझे जरा भी खबर होती तो मैं आपको सचेत कर दिये होता।

शर्माजी—खैर, यह बला तो टली, पर मैं देखता हूँ कि इस ढंगसे काम न चलेगा। अपने असामियोंको आज इस विपत्तिमें देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। मेरा मन बार-बार मुझको इन सारी दुर्घटनाओंका उत्तरदाता ठहराता है। जिनकी कमाई खाता हूँ, जिनकी बदौलत टम-टमपर सवार होकर रईस बना घूमता हूँ, उनके कुछ स्वत्व भी तो मुझपर हैं। मुझे अब अपनी स्वार्थान्धता स्पष्ट दीख पड़ती है। मैं आप अपनी ही दृष्टिमें गिर गया हूँ। मैं सारी जातिके उद्धारका बीड़ा उठाये हुए हूँ, सारे भारतके लिये प्राण देता फिरता हूँ, पर अपने घरकी खबर ही नहीं। जिनकी रोटियाँ खाता हूँ उनकी तरफसे इस तरह उदा-सीन हूँ। अब इस दुरवस्थाको समूल नष्ट करना चाहता हूँ। इस काममें मुझे आपकी सहायता और सहानुभूतिकी जरूरत है। मुझे अपना

शिष्य बनाइये। मैं याचक भावसे आपके पास आया हूं। इस भारको संभालनेकी शक्ति मुझमें नहीं। मेरी शिक्षाने मुझे किताबोंका कीड़ा बनाकर छोड़ दिया और मनके मोदक खाना सिखाया। मैं मनुष्य नहीं, किन्तु नियमोंका पोथा हूँ। आप मुझे मनुष्य बनाइये, मैं अब यहीं रहूँगा, पर आपको भी यहीं रहना पड़ेगा। आपकी जो हानि होगी उसका भार मुझपर है। मुझे सार्थक जीवनका पाठ पढ़ाइये। आपसे अच्छा गुरु मुझे न मिलेगा। सम्भव है आपका अनुगामी बनकर मैं अपना कर्त्तव्य पालन करने योग्य हो जाऊँ।



# परीक्षा

१

जब रियासत देवगढके दीवान सरदार सुजानसिंह बूढे हुए तो परमात्माकी याद आयी। जाकर महाराजसे विनय की कि दीनबन्धु! दासने श्रीमान्‌की सेवा चालीस सालतक की, अब मेरी अवस्था भी ढल गई, राज काज सभालनेकी शक्ति नहीं रही। कहीं भूल चूक हो जाय तो बुढापेमें दाग लगे। सारी जिन्दगीको नेकनामी मिट्टीमें मिल जाय।

राजा साहब अपने अनुभवशील, नीतिकुशल दीवानका बड़ा आदर करते थे। बहुत समझाया, लेकिन जब दीवान साहबने न माना तो हारकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, पर शर्त यह लगा दी कि रियासतके लिये नया दीवान आपहीको खोजना पडेगा।

दूसरे दिन देशके प्रसिद्ध प्रसिद्ध पत्रोंमें यह विज्ञापन निकला कि देवगढके लिये एक सुयोग्य दीवानकी जरूरत है। जो सज्जन अपनेको इस पदके योग्य समझें वे वर्त्तमान दीवान सरदार सुजानसिंहकी सेवामें उपस्थित हों। यह जरूरी नहीं कि वे ग्रेजुएट हों, मगर हृष्ट-पुष्ट होना आवश्यक है, मन्दाग्निके मरीजको यहाँतक कष्ट उठानेकी कोई जरूरत नहीं, एक महीनेतक उम्मीदवारोंकी रहन-सहन, आचार-विचारकी देख भाल की जायगी। विद्याका कम, परन्तु कर्त्तव्यका अधिक विचार किया जायगा। जो महाशय इस परीक्षामें पूरे उतरेंगे वे इस उच्च पदपर सुशोभित होंगे।

२

इस विज्ञापनने सारे मुल्कमें हलचल मचा दी। ऐसा ऊँचा पद

और किसी प्रकारकी कैद नहीं ? केवल नसीबका खेल है। सैकड़ों आदमी अपना-अपना भाग्य परखनेके लिये चल खड़े हुए! देवगढ़में नये-नये और रंग विरंगके मनुष्य दिखाई देने लगे। प्रत्येक रेलगाड़ीमें उम्मीदवारोंका एक मेला सा उतरता। कोई पंजाबसे चला आता था, कोई मद्रासले, कोई नये फैशनका प्रेमी, कोई पुरानी सादगीपर मिटा हुआ। पण्डितों और मौलवियोंको भी अपने अपने भाग्यकी परीक्षा करनेका अवसर मिला। बेचारे सनदके नामको रोया करते थे, यहाँ उसकी कोई जरूरत नहीं थी। रंगीन एमामें, चोगे और नाना प्रकारके अङ्गरखे और कन्टोप देवगढ़में अपनी सज-धज दिखाने लगे। लेकिन सबसे विशेष संख्या ग्रेजुएटोंकी थी, क्योंकि सनदकी कैद न होनेपर भी सनदसे परदा तो ढका रहता है।

सरदार सुजानसिंहने इन महानुभावोंके आदर-सत्कारका बड़ा अच्छा प्रबन्ध कर दिया था। लोग अपने-अपने कमरोंमें बैठे हुए रोजेदार मुसलमानोंकी तरह महीनेके दिन गिना करते थे। हरएक मनुष्य अपने जीवनको, अपनी बुद्धिके अनुसार अच्छे रूपमें दिखानेकी कोशिश करता था। मिस्टर "अ" नौ बजे दिनतक सोया करते थे, आजकल वे बगीचेमें टहलते हुए उषाका दर्शन करते थे। मि० "ब" को हुक्का पीनेकी लत थी, पर आजकल बहुत रात गये किवाड़ बन्द करके अन्धेरेमें सिगार पीते थे। मिस्टर "द', "स' और 'ज" से उनके घरोंपर नौकरोंके नाकमें दम था, लेकिन वे सज्जन आजकल "आप और "जनाब" के बगैर नौकरोंसे बात-चीत नहीं करते थे। महाशय 'क' नास्तिक थे, हक्सलेके उपासक, मगर आजकल उनकी धर्मनिष्ठा देखकर मन्दिरके पुजारीको पदच्युत हो जानेकी शंका लगी रहती थी। मिस्टर "ल" को किताबोंसे घृणा थी परन्तु आजकल वे बड़े बड़े ग्रंथ देखने पढ़नेमें डूबे रहते थे। जिससे बात कीजिये, वह नम्रता और सदाचारका देवता बना मालूम देता था। शर्माजी घड़ी रातसे ही वेद-मन्त्र पढ़ने

लगते थे और मौलवी साहबको तो नमाज और तलावतके सिवा और कोई काम न था। लोग समझते कि एक महीनेका झझट है, किसी तरह काट लें, कहीं कार्य सिद्ध हो गया तो कौन पूछता है।

लेकिन मनुष्योंका वह बूढा जौहरी आड़में बैठा हुआ देख रहा था कि इन बगुलोंमें हंस कहा छिपा हुआ है?

२

एक दिन नये फैशनवालोंको सूझी कि आपसमें "हाकी" का खेल हो जाय। यह प्रस्ताव हाकीके मजे हुए खिलाडियोंने पेश किया। यह भी तो आखिर एक विद्या है। इसे क्यों छिपा रखें। सभव है, कुछ हाथोंकी सफाई ही काम कर जाय, चलिये तय हो गया, कोर्ट बन गए खेल शुरू हो गया और गेंद किसी दफ्तरके अप्रैंटिसकी तरह ठोकरें खाने लगा?

रियासत देवगढमें यह खेल बिलकुल निराली बात थी। पढे लिखे भलेमानुस लोग शतरज और तास जैसे गभीर खेल खेलते थे। दौड़-कूदके खेल बच्चोंके खेल समझे जाते थे।

खेल बडे उत्साहसे जारी था। धावेके लोग जब गेंदको लेकर तेजीसे उडते तो ऐसा जान पडता था कि कोई लहर बढती चली आती है। लेकिन दूसरी ओरसे खिलाडी इस बढती हुई लहरको इस तरह रोक लेते थे कि मानो लोहेकी दीवार है।

सन्ध्यातक यही धूम धाम रही। लोग पसीनेमें तर हो गये। खून की गर्मी आख और चेहरेसे झलक रही थी। हाफते हाफते बेदम हो गये, लेकिन हार-जीतका निर्णय न हो सका।

अन्धेरा हो गया था। इस मैदानसे जरा दूर हटकर एक नाला था उसपर कोई पुल न था, पथिकोंको नालेमेंसे चलकर आना पडता था, खेल अभी बन्द ही हुआ था और खिलाडी लोग बैठे दम ले रहे थे कि एक किसान अनाजसे भरी हुई गाडी लिए हुए उस नालेमें

आया। लेकिन कुछ तो नालेमें कीचड था और कुछ उमडी। चढाई इतनी ऊँची थी कि गाडी ऊपर न चढ सकती थी। वह कभी बैलोंको ललकारता, कभी पहियोंको हाथसे ढकेलता, लेकिन बोझ अधिक था और बैल कमजोर। गाडी ऊपरको न चढती और चढती भी तो कुछ दूर चढकर फिर खिसककर नीचे पहुँच जाती। किसान बार-बार जोर लगाता और बार बार झुझलाकर बैलोंको मारता, लेकिन गाडी उभरनेका नाम न लेती। बेचारा इधर उधर निराश होकर ताकता मगर वहा कोई सहायक नजर न आता था। गाडीको अकेले छोडकर कहीं जा भी न सकता था। बडी आपत्तिमें फँसा हुआ था। इसी बीचमें खिलाडी हाथोंमें डण्डे लिए घूमते घामते उधरसे निकले। किसानने उनकी तरफ सहमी हुई आखोंसे देखा, परन्तु किसीसे मदद मागनेका साहस न हुआ। खिलाडियोंने भी उसको देखा मगर बन्द आँखोंसे, जिनमें सहानुभूति न थी। उनमें स्वार्थ था, मद था, मगर उदारता और वात्सल्यका नाम भी न था।

४

लेकिन उसी समूहमे एक ऐसा भी मनुष्य था जिसके हृदयमें दया थी और साहस था। आज हाकी खेलते हुए उसके पैरोंमें चोट लग गई थी। लगडाता हुआ धीरे-धीरे चला आता था। अकस्मात् उसकी निगाह गाडीपर पडी। ठिठक गया। उसे किसानकी सूरत देखते ही सब बातें ज्ञात हो गई। डडा एक किनारे रख दिया। कोट उतार डाला और किसानके पास जाकर बोला, मैं तुम्हारी गाडी निकाल दू?

किसानने देखा कि एक गठे हुए बदनका लम्बा आदमी सामने खडा है। झुककर बोला, हुजूर! मैं आपसे कैसे कहूँ! युवकने कहा, मालूम होता है, तुम यहा बडी देरसे फँसे हुए हो। अच्छा, तुम गाडी पर जाकर बैलोंको साधो, मैं पहियोंको ढकेलता हू। अभी गाडी ऊपर चढ जाती है।

किसान गाड़ीपर जा बैठा। युवकने पहियोंको जोर लगाकर उसकाया। कीचड़ बहुत ज्यादा था। वह घुटनेतक जमीनमें गड़ गया लेकिन हिम्मत न हारी। उसने फिर जोर किया, उधर किसानने बैलोंको ललकारा। बैलोंको सहारा मिला, हिम्मत बंध गई, उन्होंने कंधे झुकाकर एक बार जोर किया तो गाड़ी नालेके ऊपर थी।

किसान युवकके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। बोला, महाराज, आपने मुझे उबार लिया, नहीं तो सारी रात यहीं बैठना पड़ता।

युवकने हंसकर कहा, अब मुझे कुछ इनाम देते हो? किसानने गम्भीर भावसे कहा, नारायण चाहेंगे तो दीवानी आपको ही मिलेगी।

युवकने किसानकी तरफ गौरसे देखा। उसके मनमें एक सन्देह हुआ, क्या यह सुजानसिंह तो नहीं हैं? आवाज मिलती है, चेहरा-मोहरा भी वही। किसानने भी उसकी ओर तीव्र दृष्टिसे देखा। शायद उसके दिलके सन्देहको भांप गया, मुस्कुराकर बोला, गहरे पानीमें पैठनेसे ही मोती मिलता है।

५

निदान महीना पूरा हुआ। चुनावका दिन आ पहुँचा। उम्मीदवार लोग प्रातःकाल हीसे अपनी किस्मतोंका फैसला सुननेके लिये उत्सुक थे। दिन काटना पहाड़ हो गया। प्रत्येक चेहरेपर आशा और निराशाके रंग आते थे। नहीं मालूम, आज किसके नसीब जागेंगे? न जाने किसपर लक्ष्मीकी कृपादृष्टि होगी।

सन्ध्या समय राजा साहबका दरबार सजाया गया। शहरके रईस और धनाढ्य लोग, राज्यके कर्मचारी और दरबारी तथा दीवानीके उम्मीदवारोंका समूह, सब रंगबिरंगी सजधज बनाये दरबारमें आ विराजे! उम्मीदवारोंके कलेजे धड़क रहे थे।

तब सरदार सुजानसिंहने खड़े होकर कहा, मेरे दीवानीके उम्मीदवार महाशयो! मैंने आप लोगोंको जो कष्ट दिया है, उसके लिये

मुझे क्षमा कीजिये। मुझे इस पदके लिये ऐसे पुरुषकी आवश्यकता थी जिसके हृदयमे दया हो और साथ साथ आत्मबल। हृदय वह जो उदार हो, आत्मबल वह जो आपत्तिका वीरताके साथ सामना करे और इस रियासतके सौभाग्यमे हमको ऐसा पुरुष मिल गया। ऐसे गुणवाले संसारमें कम हैं, और जो हैं, वे कीर्त्ति और मानके सिखरपर बैठे हुए हैं, उनतक हमारी पहुँच नहीं। मैं रियासतको पण्डित जानकीनाथ सा दीवान पानेपर बधाई देता हू।

रियासतके कर्मचारियों और रईसोंने जानकीनाथकी तरफ देखा। उम्मेदवार दलकी आँखें उधर उठीं, मगर उन आँखोंमें सत्कार था, इन आँखोंमें ईर्षा।

सरदार साहबने फिर फरमाया, आप लोगोंको यह स्वीकार करनेमें कोई आपत्ति न होगी कि जो पुरुष स्वय जख्मी होकर भी एक गरीब किसानकी भरी हुई गाड़ीको दलदलसे निकालकर नालेके ऊपर चढ़ा दे उसके हृदयमें साहस, आत्मबल और उदारताका वास है। ऐसा आदमी गरीबोंको कभी न सतावेगा। उसका सकल्प दृढ है जो उसके चित्तको स्थिर रखेगा। वह चाहे धोखा खा जावे, परन्तु दया और धर्मसे कभी न हटेगा।

समाप्त